# सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं
आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 43, अंक : 10
जनवरी – 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

# अमृत कण

**आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।**
**धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।**

(चाणक्य सूत्र 17/17)

आहार (खानपान), निद्रा, भय और मैथुन (संतानोत्पादन) – ये चारों बातें पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से मिलती हैं, किंतु मनुष्यों में (पशुओं की अपेक्षा) केवल एक धर्म ही विशेष है, इसलिए धर्महीन मनुष्य को पशु के सदृश कहा गया है।

◆ ◆ ◆

**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
**एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।**

(मनुस्मृति 2/12)

वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अनुसार कार्य करना यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण (धर्म का बोधक) कहा गया है।

◆ ◆ ◆

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।**

(मनुस्मृति 6/92)

धृति, क्षमा, दम (अपने मन को वश में रखना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाह्य और आभ्यान्तर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि), विद्या (आत्मविद्या), सत्य (वाणी और मन की यथार्थता) और अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस धर्म के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।**

(मनुस्मृति 8/17)

एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और सब तो शरीर के नाश के साथ ही उसको त्यागकर अन्यत्र चले जाते हैं।

◆ ◆ ◆

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।**

(मनुस्मृति 8/17)

नष्ट (अरक्षित) हुआ धर्म ही मनुष्य को मार डालता है और वही रक्षित होने पर मनुष्य की रक्षा करता है। इसलिए नष्ट धर्म कहीं हमको न मार डाले एतदर्थ धर्म का नाश नहीं करना चाहिए।

◆ ◆ ◆

# सिद्धयोग

## योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 43 अंक : 10

चन्द्रोद्भासित शेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्य सारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः।।
किं वानेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम्।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वती वल्लभम्।।

[illegible]

जनवरी, 2011

**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

# SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन


## अनुक्रमणिका


1. विशेष लेख –योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 10
3. कर्म–मीमांसा –डॉ. बदरीनारायण पञ्चोली 13
4. श्री प्रभु चरणों में समर्पित –राजेश कुमार सिंह 19
5. काम : सबसे बड़ा शत्रु एवं समाधान –जय नारायण राय 20
6. जीव क्या है और अन्तर्यामी क्या है? –मोती राम शर्मा 22
7. 'लल्ला! बच्ची तो अपनी ही है' –केशव देव उपाध्याय 23
8. विनय–पद –मोहन स्वरूप 27
9. भगवान पतञ्जली देव –प्रो. डॉ. श्री रामशरण सिंह 28
10. महायोगी गोरक्षनाथ एवं हठयोग –डॉ. श्री विजय सिंह 32
11. श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 36
12. स्वामी विवेकानन्द जी का भाषण (कैलीफोर्निया) 37
13. योग में गायत्री मन्त्र का स्वरूप –डा. जे.पी. शर्मा 39
14. गुरुदेव ! ऐसा वर दो –जगदीश राय बंसल 40



| | |
|---|---|
| एक प्रति | : रु. 11.00 |
| वार्षिक शुल्क | : रु. 140.00 |
| द्विवार्षिक | : रु. 250.00 |
| आजीवन (10 वर्षीय केवल) | : रु. 850.00 |

विशेष लेख

# भूत जय की साधना का अमर फल

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने सिद्धयोग के विशेषांक में 'निर्माण चित्त' का वर्णन किया। एक योगी नवनिर्मित चित्त के द्वारा क्या–क्या कार्य कर सकता है और उसमें चित्त निर्माण की योग्यता कब आती है ये सब पिछले लेख में भली प्रकार समझा दिया गया है। चित्त निर्माण का सम्बन्ध योगी के सूक्ष्म शरीर से है। चित्त का विस्तार भी सूक्ष्म शरीर में ही रहा करता है। निर्माण चित्त के द्वारा योगी सूक्ष्म कार्य कर सकता है। ज्यों ही योगी का संकल्प दृढ़ होता चला जाता है और वह पंच महाभूतों पर पूर्ण जय प्राप्त कर लेता है तो उसके अन्दर निर्माण चित्त की अपेक्षा निर्माण कार्य करने की भी योग्यता खूब आ जाया करती है। योगी किस प्रकार से स्थूल सूक्ष्म भूतों पर जय प्राप्त करता हुआ अपने आपको निर्माण कार्य में बदल दिया करता है यह सब विषय समझा देने का मेरे इस लेख का मुख्य लक्ष्य है। योग–दर्शन के विभूति पाद में 44वें सूत्र के द्वारा भगवान पतंजलिदेव इस विषय को इस प्रकार कहते हैं:–

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः।। 44।।

अर्थात् महाभूतों के स्थूल सूक्ष्म आदि स्वरूपों को समझकर मनुष्य महाभूतों पर जय प्राप्त कर लेता है। इस सूत्र पर पढ़िये व्यास भाष्य है:–

*तत्र पार्थिवाद्याः शब्दादयो विशेषाः सहाकारादिभिर्धर्मैः स्थूलशब्द परिभाविताः; एतद् भूतानां प्रथमं रूपम्, द्वितीयं रूपं स्वसामान्यम्ः मूर्तिभूमिः, स्नेहो जलं, वन्हिरुष्णता, वायुः प्रणामी, सर्वतोगतिराकाशः इत्येतत्स्वरूप शब्देनोच्यते, अस्य सामान्यस्य शब्दादयो विशेषाः, तथाचोत्तम्– 'एक जाति समन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्तिः' इति, सामान्य विशेषसमुदायोऽत्र द्रव्यं, द्विष्ठो हि समूहः प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगतः शरीरं वृक्षो यूथं वनमिति, शब्देनोपात्तभेदावयवानुगतः समूहः–उभये देव मनुष्याः, समूहस्य देवा एक द्वितीयो भागस्थभ्यामेवाभिधीयते समूहः, स च भेदाभेदविवक्षितः, आम्राणां वनं ब्राह्मणानां संघः, आम्रवणं ब्राह्मणसंघ इति, स*

*पुनर्द्विविधो युतसिद्धावयवोऽयुत सिद्धावयवश्च युतसिद्धावयवः समूहो वनं संघ इति, अयुतसिद्धाव यव संघातः शरीरंवृक्ष परमाणुरिति, अयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यामिति पतंजलिः एतत्स्वरूपमित्युक्तम्, अथकिमेषां सूक्ष्मरूपं तन्मात्रं भूतकारणं, तस्यैकोऽवयवः परमाणुः सामान्यविशेषात्मायुतसिद्धावयवभेदानुगतः समुदाय इति, एवं सर्वतन्मात्राणि, एततृतीयम्, अथ भूतानां चतुर्थं रूपंख्यातिक्रियास्थितिशीला गुणाः, कार्यस्वभावानुपाति-नोऽन्वय शब्देनोक्ताः, अथैषां पंचमं रूपमर्थवत्वं भोगापवर्गार्थता गुणेष्वन्वीयनी गुणास्तन्मात्रभूतभौतिकेष्विति सर्वमर्थवत् तेष्वितानीभ्भूतेषु पंचसु पंचरूपेषु संयमानस्य तस्य रूपस्य स्वरूपदर्शनं जयश्च प्रादुर्भवति, तत्र पंचभूतस्वरूपाणि जित्वा भूतजयां भवति, तज्जयाद् वत्पानुसारिणय इव गावोऽस्य संकल्पानुविद्यायिन्यो भूतप्रकृतयो भवन्ति।*

अर्थात् भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करने के लिए महाभूतों के 5-5 प्रकार के विभिन्न स्वरूपों को एवं उनके धर्मों को समझकर संयम करने से योगी को भूतजय की सिद्धि प्राप्त होती है। भूतों के स्वरूप स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय एवं अर्थ वत्व आदि भेदों से 5 प्रकार के हैं। उनको निम्नांकित प्रकार से समझ लीजिए-

**1. स्थूलः** - पंच महाभूतों का स्थूल स्वरूप इस प्रकार है जैसे पृथ्वी का पृथ्वी ही स्थूल रूप है और जल का जल ही स्थूल रूप है, वायु का वायु और आकाश का खाली पोल। यही इन पाँच महाभूतों में स्थूल रूप है जो स्वरूप हर व्यक्ति को देखने में आते हैं।

**2. स्वरूपः**- दूसरा रूप उनका स्वरूप है। उदाहरण के लिए जैसे पृथ्वी में गंध, जल में चिकनाहट, अग्नि में गर्मी, वायु में कम्पन और आकाश में पोल।

**3. सूक्ष्मः**- तीसरा रूप सुक्ष्म है जिनको तन्मात्र कहा जाता है, जैसे पृथ्वी का तन्मात्र गन्ध, जल का रस तन्मात्र अग्नि का रूप तन्मात्र, वायु का स्पर्श तन्मात्र। यह पंच महाभूतों का तीसरा रूप है।

**4. अन्वयः**- चौथा रूप अन्वय है। अन्वय का अर्थ ओत-प्रोत रहना, जैसे सतोगुण, रजोगुण, ये तीनों गुण अपने प्रकाश, प्रवृत्ति और स्थिति वाले धर्मों से सर्वत्र अनुगत रहते हैं यही पंच महाभूतों का अन्वय रूप है।

**5. अर्थवत्त्वः**- अर्थात् इनका अर्थवान होना, इनसे कोई उपकार हो, लाभ हो, सो ये

पांचों महाभूत भोग अपवर्ग के दाता हैं। महाभूत के सम्मिश्रण से ही मनुष्य भोग का भोक्ता है। इसलिए नित्य चेतन आत्मा बौद्धेय धर्मो का अनुगामी होकर पंच महाभूतों में जनित सभी प्रकार के दृश्यात्मक भोगों का भोक्ता रहता है। दृश्य का दूसरा कार्य अपवर्ग है जिस समय जीव वैराग्य भाव को प्राप्त होकर बराबर सूक्ष्मतर और उससे सूक्ष्मतम् तत्वों में संयम करता हुआ आगे बढ़ता रहता है वह अपवर्ग को प्राप्त कर लेता है। भूतों के इन भिन्न पाँच रूपों में जब तक योगी साक्षात् पर्यन्त बराबर संयम करता है तो उसके फलस्वरूप वह भूत जय को प्राप्त होता है।

इस प्रकार की भूत जय की साधना कर लेने के बाद योगी को स्वयं ही अणिमादिक सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है। किंतु ये बहुत ही आवश्यक है कि साधक को बड़े धैर्य के साथ अपने साधन में संलग्न रहना चाहिए। साधक यौगिक ऐश्वर्य को पढ़कर और समझ कर भी इन्द्रिय लोलुप रहता है एवं पुरुषार्थ शून्य होकर भाग्य के भरोसे पर पड़ा रहता है।

वो अपने श्रेय मार्ग से पतित हो जाता है। जो परम वीर्यवान साधक उत्साह से शून्य नहीं होता और अपने पूरे-पूरे प्रयत्न में लगा रहता है वह अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। भूत जय की कठिन से कठिन साधना पर जय प्राप्त कर लेने वाले योगी को जल्दी ही अणिमादिक सिद्धियों का प्रादुर्भाव हो जाया करता है। भगवान पतंजलिदेव लिखते हैं-

**तपोऽणिमादि प्रादुर्भाव काय संपत्तद्धर्मानभिघातश्च।।**

अर्थात् भूत जय की साधना के बाद योगी को अणिमादिक ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं और कायिक सम्पत्ति में कोई रूकावट पैदा नहीं होती। अणिमादिक ऐश्वर्यो का वर्णन व्यास भाष्य में इस प्रकार लिखा है:-

***तत्राणिमा-भवत्यणु:, लघिमालघुर्भवति, महिमा, महान भवति प्राप्तिअगुल्यग्रेणाप स्पृशति चन्द्रमसम्, प्राकम्यम् इच्छाऽनभिघातो भूमा वुन्मज्जति निमज्जति यथोदके वशित्वम भूत भौतिकेषु वशी भवति अवश्य श्चान्येपाम, इर्शितृत्वं तेपाम्यभवाणयव्यूहाना मीष्टे, यत्र कामावहायित्वंसत्य संकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृती नामवस्थान।***

अर्थात् भूत जप प्रात कर लेने पर योगी को अणिमादिक सिद्धियाँ जो अनायास प्राप्त हो जाती हैं।

**1. अणिमा**

भवत्यणु-अणुमात्र हो जाना।

## 2. लघिमा

लघुर्भवति हल्का हो जाना।

## 3. महिमा

महान भवति- बड़ा हो जाना।

## 4. प्राप्ति

अंगल्यग्रैणमिस्पृशति- अंगुली के अगले भाग से चन्द्रमा को छू लेने की ताकत होना।

## 5. प्राकाम्य

इच्छाऽनेभिघातो भूमा वुन्मज्जति-किसी भी प्रकार की इच्छा का न रूकना, पूर्ण हो जाना, चाहे तो योग। जिस प्रकार सर्व साधारण मनुष्य जल में गोता लगा लिया करते हैं और बाहर निकल आया करते हैं इसी प्रकार पृथ्वी में प्रवेश कर बाहर-निकल आयें।

## 6. वसित्वम्

भूतभौतिकेषुवशीभवति अर्थात् पंच महाभूतों से रहने वाले सभी पदार्थों पर उस योगी का पूर्ण वशीकार होता है और वह स्वयं किसी के वश में नहीं रहता।

## 7. ईशतत्व

'षषा-प्रभवोप्यव्यूहाना मीष्टे' अर्थात् पंच महाभूतों के भौतिक कार्यों को बनाने और बिगाड़ने की सामर्थ्य रखना।

## 8. यत्रकाया व सायत्वम्

'सत्य संकल्पस्यथा' अर्थात् सत्य संकल्पता जैसे योगी की इच्छा होती है पंच महाभूतों का उस प्रकार अवस्थान हो जाता है। और इन महासिद्धियों को पाकर योगी सर्व सामर्थ्यवान बन जाता है। महाभूतों का कोई भी कार्य उसके प्रतिकूल नहीं करता प्रत्युत उसको कार्य संपन्न और प्रगट हो जाती है।

भूत जय वान योगी को उपरोक्त अणिमादिक ऐश्वर्य अपनी साधना के आधार पर अनायास ही प्रगट हो जाया करते हैं। और ज्यूँ-ज्यूँ भूत जयी योगी अपने अभ्यास में रत रहता है

उसकी कायिकसम्पत्ति बढ़ती रहती है। और ज्यूँ-ज्यूँ इसका अभ्यास दृढ़ता से बढ़ता है तो बढ़ी हुई कायिक सम्पत्ति का अनभिघात अनायास ही हो जाता है। सिद्धों के चरित्रों में ऐसी बातें सुनने में आती हैं कि वे लम्बे समय से समाधिस्थ होने पर भी जब उठते हैं तो अत्यंत सुन्दर सुकुमार एवं अल्पवयस्क दिखाई देते हैं और जहाँ पर यौगिक ग्रन्थों में योगियों की काय सम्पत्ति का वर्णन मिलता है और आत्म ध्यान की कथायें सविस्तार लिखी रहती हैं वहाँ उनके चरित्रों के अन्दर और कायिक अवयव संघटनों पर देवलोक के जीव भी मोहित से रहा करते हैं और वह चाहा करते हैं कि इस योगी का सम्पर्क हमें मिल जाय। योगी के मन पर तरह-तरह के आकर्षण से बच जाये तो वह अवश्य ही निर्वाण पद को प्राप्त करता है। अन्यथा स्वर्गीय भोगों में फंसकर स्वर्ग लोकवासी बनकर रहा करता है। यह काय-सम्पत्ति क्या है इसका योग-दर्शन में इस प्रकार वर्णन किया है:-

**रूपलावण्येबल बज्रसंहननत्वानि कायसम्पद्।।46।।**

अर्थात् वह अत्यन्त रूपवान कान्तिवान वज्र के समान दृढ़ और सब प्रकार अच्छेद्य शरीर वाला हो गया है। सब प्रकार से शरीर की अच्छेद्यता, अभेदता को प्राप्त रहना यह योगी की काय सम्पत्ति है, जो भूत जय प्राप्त होने पर स्वभाव से ही बनी रहती है। साधक सिद्ध योगी को जीवनभर की कठिन साधना के बाद भूतों के दुष्परिणाम नहीं हो पाते। भूत जय योगी विषपान करके उसको सहज में ही पचा जाता है और अमृत के गुणों को अपने अन्दर प्रगट कर लेता है। साधना करने वाले योगी को ये सम्पत्ति बड़े कठिन प्रयत्न के बाद प्राप्त हुआ करती है किंतु अनादि महासिद्ध सदैव ईश्वर सदैव मुक्त: के स्वरूप करने वाले अनादि महासिद्ध सर्वत: परिपूर्ण श्रीकृष्ण के लिए यह भूत जय आदि ऐश्वर्य अनायास ही प्राप्त हैं। अत: पूतना के स्तनों से विषपान करने पर भी शरीर में किसी प्रकार का कुप्रभाव न हो करके उसकी काय सम्पत्ति को ज्यों का त्यों बने रहना उस महायोगी के भूत जयात्मक पूर्णाधिकार को पूर्णरूपेण प्रगट करती है।

इस प्रकार से जो योगी भूतजयी हो जाता है उसके अन्दर अचिन्त्य शक्तियाँ बढ़ जाया करती हैं। जिस प्रकार पिछले लेख में हमने यह बतलाने की चेष्टा की थी कि योगी अपने निर्माण चित्त से हजारों से मिल सकता है, हजारों से बात चीत कर सकता है और ये सब कुछ कार्य करते हुए भी वह किसी हिमालय की गहर गुहा में स्थित हो करके अपने आपको बिल्कुल निर्लेप एवं अकर्तत्व में रख सकता है इसी प्रकार से भूत जयी योगी अपनी अलौकिक शक्ति से सैंकड़ों कायनिर्माण करके लोक में कार्य कर सकता है और सब प्रकार

के कर्म बन्धन से मुक्त रह सकता है। योगी के लिए हमारे शास्त्रों में इस प्रकार का लेख है:-

इच्छारूपो हि योगीन्द्र। स्वतन्त्रस्त्व जरामरः।।
क्रीडते त्रिपु लोकेषु। लीलया यत्र कुत्रचित्।।
अचिन्त्य शक्ति मान्योगी। नाना रूपाणि धारयेत्।।
सहरेच्च पुनस्तानि। स्वेच्छया विजितेन्द्रिय।।
नासौ मरणमाप्नोति। पुनर्योगबलेन तु।।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
मर। यत्र सर्वेषां। तत्रासौ परिजीवति।।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु। तत्रासौ मृत एव वें।।
कर्त्तव्यं नैव तस्यारित। कृतेनासौ न लिप्यते।।
जीवन्मुक्त सदा स्वच्छ। सर्वदोष विवर्जित।।

अर्थात् योगिन्द्र लोग इच्छा रूप होते हैं। अपनी इच्छा से ही वे लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते हैं। उनकी शक्ति इतनी अद्‌भुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बना लें और फिर उनका संहार भी कर दें। वे लोग हठ सा. ना के द्वारा अपने आपको मार लेते हैं। कठिन योग साधनायें करते हैं इसके परिणाम स्वरूप वे लोग फिर मरण धर्मा नहीं रहते। जो व्यक्ति अपने आपको हठ साधना के द्वारा मार लेता है उसका फिर मरण नहीं होता। योगीन्द्र लोग विजितेन्द्रिय होते हैं। जिन वासना के गर्तो में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहाँ पर योगेश्वर लोग सर्वथा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग हर्षोल्लास के साथ भोगाशक्ति में अपने को जिन्दा रखते हैं वहाँ पर वे यतीन्द्र लोग सर्वदा मरे ही रहते हैं, ऐसे योगेश्वरों का कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। उन लोगों की स्थिति कर्म ब्रन्धन से परे हो जाती है। वे लोग सदैव जीवन्मुक्त, स्वच्छ एवं दोष रहित होते हैं।

काय निर्माण करने वाला योगी अपने स्थूल शरीर से एक जगह स्थित हो करके निर्माण काय के द्वारा अपने लोक और परलोक के कार्य सफलता से कर सकता है।

## निर्माण कार्य की एक सच्ची घटना

जंगल में रहने वाले साधुओं का अनुभव जंगली साधु ही कर सकते हैं। एकान्त में रहने वाला अभ्यासी अपने योग बल को कितना बढ़ा जागा करता है इसको केवल जंगलों के ही अभ्यासी बता सकते हैं।

मैं एक बार नीलाचल पर्वत पर एकान्तवास करने गया। वहाँ पर मेरा एक साधु से परिचय हुआ। उससे बातचीत करने पर उसके मुख से जंगली साधुओं के अनुभव सुने। उसने एक 400 वर्ष के निर्माण काय वाले योगी की कथा मुझे बताई। उसने बतलाया नीलाचल की इस तराई में रोहतक जिले के एक योगिराज रहते हैं जो स्थूल रूप से यहाँ स्थित रहने पर भी निर्माण काय से देव लोक में जाया करते हैं। स्वर्ग लोक की देवनगरी अमरावति में पहुँच करके वहाँ की स्वर्गीय विकास और विज्ञान के दृश्यों को देखा करते हैं। योगी की निर्माण काय की अचिन्त्य शक्ति । किन्तु यह उसमें प्रगट तभी हो सकती है जब कि वह भूत जयी बन जाये। अत: योगाभ्यासी साधकों को चाहिए कि यौगिक कोर्स के अनुसार भूत जय की साधना को दृढ़ता से बढ़ायें। धैर्य को न छोड़े। जो लोग धैर्य के साथ अपनी साधना को बढ़ाते चले जाते हैं वो लोग अपनी सफलता के परम लक्ष्य को जल्दी से जल्दी पा जाया करते हैं।

▣▣▣

## 'अनुभुति ही धर्म है'

***"जो धर्म को जानने के लिए केवल धर्मग्रन्थ पढ़ता है, वह कहानी के उस बोझ ढोने वाले पशु के समान है, जो अपनी पीठ पर शक्कर का बोरा लादे चल रहा हैं, पर उसकी मिठास को नहीं जानता।"***

*-स्वामी विवेकानन्द*

# ध्यान क्या व कैसे ?

## आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

पिछले लेख में मैंने मन को एकाग्र करने के आधारभूत कुछ साधनों का वर्णन किया था उसी क्रम में पातंजल सूत्रों के आधार पर विषय को आगे बढ़ाते हैं। मन को एकाग्र करने का एक और आधार सूत्र है–

वीतराग विषयं वा चिन्तम्

अर्थात् वीतरागी महापुरुषों को ध्यान का आधार बनाया जाये तो चित्त एकाग्र हो जाता है। ***वीतरागी महापुरुष*** उन्हें कहते हैं जिन्होंने समाधि के द्वारा अविद्यादि क्लेशों को नष्टमूल कर दिया है। अज्ञानी मनुष्यों में अविद्यादि पंच क्लेश रहा करते हैं इसी कारण से जीव बन्धन में रहता है। जिन लोगों ने पंचक्लेशों को नष्ट कर दिया है उनमें अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नहीं रहते। ऐसे पावन पुरुष ही वीतरागियों की श्रेणी में आते हैं। व्यास, वशिष्ठ, शुकदेव आदि वीतरागी पुरुष हैं। अन्य जितने भी योगी हैं, सप्तर्षि हैं, सद्गुरु हैं ये वीतरागी कहलाते हैं। ऐसे पुरुष पूर्व में कभी अविद्या के कारण बन्धन में तो माने जा सकते हैं किंतु अब अविद्या नाश के कारण ये मुक्त पुरुष कहलाते हैं, ऐसे महापुरुष ईश्वरतुल्य कहे जाते हैं। ईश्वर में तो अविद्या कभी थी ही नहीं इसलिए वे तो सदैव मुक्त हैं और सदा से ही ईश्वर हैं। सिद्ध सद्गुरु भी वीतरागी पुरुष हैं। गुरुगीता में भगवान् सदाशिव ने पार्वती को गुरु तत्व का उपदेश दिया है और बताया है कि गुरु से बढ़कर कोई तत्व नहीं है 'नास्ति तत्वं गुरोः परम्' गुरुदेव से बढ़कर कोई तत्व नहीं है वे ही तारकब्रह्म कहे जाते हैं गुरुगीता में ही आया है–

**गुरुर्ब्रह्मा: गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवोः महेश्वरः।**
**गुरु साक्षात् पर ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।।**

अर्थात् गुरु ही ब्रह्म और महेश्वर है। गुरु ही साक्षात् परब्रह्म है, ऐसे गुरुदेव को सदा ही नमस्कार है। गुरुदेव के ध्यान करने से, वीतरागी ऋषियों का ध्यान करने से मन एकाग्र होता है। भक्तियोग के अन्तर्गत गीता के बारहवें अध्याय में अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान कहते हैं, 'हे अर्जुन! तू अपने मन और बुद्धि को मुझ में लगा ले तो तू मुझमें ही वास करने लगेगा, रहने लगेगा इसमें कोई संशय की बात नहीं है। वास करने का तात्पर्य है कि आन्तरिक तादात्म्य स्थापित हो जायेगा।

इस तादात्म्य से अर्जुन के चित्तजन्य अविद्या का स्वतः नाश होने लगेगा और चित्त निर्मल हो जायेगा। मन में मन और बुद्धि में बुद्धि लगा देने का उपाय है भगवान् के स्वरूप का ध्यान करना। उस स्वरूप में ही तो मन और बुद्धि अवस्थित हैं। ध्यान करने से साधक का मन ध्येय में लय होकर चंचलता को त्याग कर स्थिरता को प्राप्त कर लेगा। स्थिर तत्त्व में लयता प्राप्त करने पर स्थिरता प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया ध्यान योग की एक वैज्ञानिक प्रकिया है जिसे बहुत लम्बे समय के अभ्यास से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में भगवान् के तेजस परमाणु में साधक के क्षीण परमाणु लय होते जाते हैं और भगवान् के दिव्य परमाणु साधक के मन, बुद्धि में प्रवेश करते जाते हैं। इस प्रकार से साधक का मन–बुद्धि भी दिव्यता से आलौकित हो जाता है। मन को एकाग्र करने की आधार भूमि के रूप में अगला सूत्र दिया है– ***'स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्बनं वा'*** स्वप्न ज्ञान और निद्रा ज्ञान को एकाग्रता का आधार बनाने पर चित्त स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। जागृत अवस्था में मनुष्य का मन प्रायः रजोगुण प्रधान होने के कारण बहिर्मुखी कहा जाता है इस कारण से चित्त चंचल बना रहता है। स्वप्न में तमोगुण प्रधान रहता है अतः वृत्तियाँ अन्तर्मुख हो जाती हैं। जिस प्रकार से स्वप्न व निद्रा में तमोगुण प्रधान रहता है, ध्यान के समय तमोगुण के स्थान पर सतोगुण से वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना चाहिए। कभी–कभी साधक निद्रा में भी सात्विकता के कारण अच्छे–अच्छे दृश्य देखता है, देवी देवताओं तथा सिद्ध पुरुषों का दर्शन करता है तो उसकी स्मृति चित्त में बनी रहती है। ध्यान काल में उन सुन्दर दृश्यों को मानस पटल पर उतारने से चित्त प्रसन्न हुआ करता है और साधक का मन एकाग्र होने लगता है। निद्रा भी एक वृत्ति है अन्ततः इसका भी निरोध करना ही होता है। श्रुतियों में भी आता है 'जागृत स्वप्नसुषुप्त च गुणतो बुद्धि वृत्तयः' अर्थात् जाग्रत, स्वप्न व सुषप्ति भी बुद्धि की वृत्तयाँ ही हैं अतः निरोधव्या हैं। निरोध करने योग्य हैं।

चित्त के एकाग्र करने के एक और परिकर्म को बताते हुए सूत्र लिखा है – 'यथाभिमत ध्यानाद्वा' अर्थात् जो स्वरूप या तत्व अभीष्ट हो उसका ध्यान करने से मन एकाग्र हो जाता है। मनुष्य की रुचि भिन्न–भिन्न होती है। जिस इष्ट में, देवता में श्रद्धा हो, उसका ध्यान क ने से मन स्वतः एकाग्र होता है।

अन्तिम एक और अत्युत्तम उपाय का वर्णन करते हुए पतंजलि भगवान् ने सूत्र दिया है– ***'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'*** अर्थात् ईश्वर प्राणिधान से मन एकाग्र होकर समाधि प्राप्ति होती है। सब प्रकार से ईश्वर की शरणागति लेना, ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। मन और शरीर से सम्पादित होने वाले सम्पूर्ण कर्मों को भगवदर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है। भक्ति विशेष से प्रसन्न होकर भक्त की अभीष्ट इच्छा को भगवान पूरा कर देते हैं। समाधि की इच्छा वाले को भगवान समाधि प्रदान कर देते हैं। ईश्वर प्रणिधान से असंख्य आत्मायें जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होकर ईश्वर में लीन हुए हैं। इतिहास में कबीर, नानकदेव, मीराबाई, सूरदास,

तुलसीदास, नरसिंह मेहता, तुकाराम, नामदेव आदि–आदि अनेक भक्त ईश्वर प्रणिधान से भव सागर से तर गये हैं। गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान ने कहा है कि जो अव्यभिचारी भक्ति से मुझे भजता है। वे तीनों गुणों से ऊपर होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सिद्धयोग परम्परा में सद्गुरु की कृपा मात्र से ही शक्तिपात होने से नाड़ी शोधन पूर्वक समाधि स्वतः सिद्ध हो जाती है।

▣ ▣ ▣

## *नववर्ष मंगलमय हो !*

*नव वर्ष मंगलमय हो ! ईस्वी सन् 2011 का आगमन हो रहा है। यह नया वर्ष सुख, समृद्धि, आरोग्यता एवं हर्षोल्लास से बीते यही सर्वशक्तिमान प्रभु से प्रार्थना है।*

*आचार्य दासलाल*

*सम्पादक 'सिद्धयोग'*

# कर्म-मीमांसा

डा. बदरीनारायण पञ्चोली

*(डा. पंचोली श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली के प्रवाचक और भारतीय दर्शन विद्या के सुविख्यात लेखक हैं। 'सिद्धयोग' के पाठकों को निश्चय ही कर्म मीमांसा पर लिखा यह लेख ज्ञानवर्द्धक और उपादेय सिद्ध होगा।*

*–सं. सम्पादक)*

'कर्मेति मीमांसका:' महाकवि कालिदास के शब्दों में कर्म की इतनी महत्ता स्वीकृत की गयी है कि मीमांसा दर्शन के आचार्यों ने कर्म को ही परमात्मा माना है। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' चाहे हम शुभ कर्म करें या अशुभ, उसका फल तो हमें सुनिश्चित रूप से भोगना ही पड़ता है।

**कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।**
**जो जस करहि सो तस फल चाखा।।**

इस चौपाई के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने भी कर्म के प्राधान्य को स्वीकृत किया। 'न जातु तिष्ठत्यकर्मकृत' अर्थात् कोई भी प्राणी कभी भी बिना कर्म किये रह ही नहीं सकता। इस वचन के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्म की अपरिहार्यता बतलायी है। इस तरह हम देखते हैं कि सभी शास्त्रों में कर्म की महत्ता को माना गया है।

कर्त्ता के द्वारा विधीयमान कर्त्तव्य पालन से सिद्ध होने वाला दृष्ट कार्य ही कर्म कहलाता है। पाणिनी का सूत्र है 'कर्त्तरीप्सित तमं कर्म' जिसकी वृत्ति वरदराजाचार्य ने लिखी है 'कर्तु: क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।' भाव यह है कि कार्य करने वाले की क्रिया के द्वारा प्राप्त करने योग्य परमाभिप्रेत फल जिसके लिए वह क्रिया में प्रवृत्त हुआ वह कर्म कहा जाय।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतु र्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।**

इस श्लोक के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्त्तव्य का पालन नि:स्पृह भाव से करने का आदेश देते हैं तथा निष्कर्मण्यता एवं कर्मफलस्पृहा से बचते हुए निष्काम कर्मयोगी होने का सन्देश निखिल संसार को प्रदान करते हैं।

वस्तुत: आत्मज्योति के अतिरिक्त निखिल सृष्टि त्रिगुणात्मिका है केवल आत्म तत्व ही निर्गुण है। सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।

इन गुणों में क्षोभ होते ही सृष्टि का श्रीगणेश होता है तथा महत् तत्वादि क्रम से सम्पूर्ण सृष्टि बनती है। 'प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्थ' इस ईश्वर कृष्णकृत् कारिकांश से स्पष्ट होता है कि सत्व गुण का मुख्य प्रयोजन ज्ञानात्मक प्रकाश प्रदान करना है तथा रजोगुण का मुख्य कार्य प्रवृत्ति करवाना क्रियाशीलता और तमोगुण का कार्य सतत् क्रियाशीलता के प्रभाव से सृष्टि समाप्त न हो जाय एतदर्थ नियम न करना तथा विश्रान्ति प्रदान करवाना। इसीलिए संसार में एक क्षण भी प्राणी निष्क्रिय नहीं रह सकता। यद्यपि बाह्येन्द्रिय व्यापार कभी होते हैं और कभी नहीं होते किंतु जिस समय बाह्य दृष्टि से हम कुछ नहीं कर रहे होते हैं उस समय भी 'चलश्च गुणवृत्तम्' के अनुसार चंचलता गुणों का स्वभाव है, क्योंकि सभी गुण एक दूसरे के साथ मिलकर ही रहते हैं तथा बाह्याभ्यन्तरिक निखिल क्रियाओं का सम्पादन करते रहते हैं। अन्योऽन्याश्रयाभिभवजनन मिथुनवृत्तयश्च गुणाः' क्योंकि गुण एक-दूसरे के सहारे रहते हैं एक का प्राधान्य होने पर दूसरे दोनों उससे अभिभूतावस्थापन्न गौण हो जाते हैं किंतु सत्ता तीनों की सदा साहचर्यभाव से रहती ही है। इसीलिए सम्पूर्ण सृष्टि में जितना भी सृजन होता है वह इन तीनों गुणों के मिलकर कार्य करने के कारण सर्वथा त्रिगुणात्मक ही होता है।

विश्व में कर्म के प्राधान्य का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह संसार ही रजोगुण प्रधान है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहते हैं कि

**ऊर्ध्वङ्गच्छन्ति सत्वस्था,**

**मध्ये तिष्ठन्तिराजसा:।**

**जघन्यगुणवृतिस्था अधो,**

**गच्छन्ति तामसा:।।**

अर्थात् जो सत्वगुण विशिष्ट सूक्ष्म शरीरावच्छेदकत्वेन विद्यमान प्राणी सत्कर्म करते हैं वे निश्चित, भूलोक से ऊपर वाले भुवलोक, स्वलोक, महर्लोक, जनोलोक तपोलोक एवं सत्य लोक, इन छः लोकों में से अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्राप्तव्य लोक को पा लेते हैं। तथा पाप कर्म करने वाले तमोगुण विशिष्ट लिङ्गशरीरावच्छेदकत्वेन स्थित चेतन तत्व जीवात्मा भूलोक के नीचे स्थित अतललोक, वितललोक, सुतललोक, तलातललोक, रसातललोक, महातललोक एवं पाताललोकों में से अपने कर्मों के अनुसार प्राप्तव्य किसी लोक को प्राप्त करता है। किंतु रजोगुण विशिष्ट भोगशरीर वाले जीवात्मा को तो भूलोक में ही पुनर्जन्म लेकर रहना पड़ता है। इसीलिए स्वाभाविक रूप से भूमण्डल पर रजोगुण का बाहुल्य है और रजोगुण का अपना काम ही प्रवृत्यात्मक है, तथा किसी का प्राधान्य होने पर वह अपना प्रभाव प्रकट नहीं करे ऐसा हो नहीं सकता। यही कारण है कि संसार में कर्म की अनवरतता स्वीकृत की गयी है।

संसार का हर प्राणी सानन्द सहज भाव से अपने पूर्व जन्मार्जित कर्मों के अनुसार प्राप्त जन्म, आयु एवं भोगों का फल भोग सके तथा अन्य व्यक्तियों के भोग में बाधक नहीं हो सके

इसी के लिए सम्पूर्ण शास्त्रों में कर्तव्याकर्तव्य का निर्देश समाधिगत होता है। 'अशास्त्रविहितङ्कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्' – भाव यह है कि शास्त्र में जिस कर्म को करने का जिसके लिए विधान नहीं किया गया हो ऐसे कर्म को करने वाला प्राणी पाप को प्राप्त करता है। हम रोजमर्रे के जीवन में भी देख सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को किसी काम को सम्पन्न करने हेतु नियुक्त किया जाय और वह व्यक्ति उस कार्य को सम्पन्न नहीं करता तथा अन्य कोई कार्य स्वेच्छा से करने लगता है तो उसका नियोक्ता उससे अप्रसन्न होकर उसे पदावनत कर देता है, और जो व्यक्ति अपने निर्दिष्ट कर्तव्य कर्म को विधिपूर्वक पूर्ण कौशल से सम्पन्न कर देता है उस व्यक्ति से प्रसन्न होकर उसका नियोक्ता उसे सुनिश्चित रूप से पदोन्नत करता है और जो व्यक्ति सामान्य रूप से निर्धारित कार्य को करता रहता है उसे न पदावनत करता है और न पदोन्नत ही। अपितु यथावद् यथास्थान बनाये रखता है। ठीक इसी प्रकार से परमात्मा भी शास्त्र विहित कर्मों को यथा समय यथाविधि पूर्ण सात्विकता से सम्पन्न कर लेने वाले पुण्यात्माओं को भूलोक से ऊपर वाले छहों लोकों में कर्मानुसार प्रोन्नत कर देता है तथा शास्त्र की मर्यादा भ्रष्ट करके कर्तव्य कर्म पराङ्मुख रहने वाले प्राणियों को नाराज होकर भूलोक के नीचे वाले सात लोकों में कर्मानुसार पदावनत करता है, तथा सामान्य रूप से शास्त्रविहित कर्म करने वाले रजोगुण विशिष्ट प्राणियों को सांसारिक जन्म–मृत्यु मय आवागमन के चक्कर में कर्मानुसार बनाये रखता है। भगवान् स्वयं विश्वबन्द्य अनूठे ग्रन्थरत्न श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहते हैं कि–

**'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'**

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चातुवर्ण्य का निर्माण मैंने स्वयं वैशिष्ट्यों तथा कर्मों के विभागों के अनुसार बनाया है। हम चाहे कितना ही प्रयास करें जो कर्म हैं उनकी सम्पन्नता के लिए चार वर्गों में बाँटना नितान्त आवश्यक है। उसके बिना संसार की व्यवस्था चल ही नहीं सकती। उदाहरणार्थ एक न्यायालय की प्रक्रिया को ही लें तो स्पष्ट हो जाता है कि न्यायाधीश स्वयं सभी मुकदमों की फायलों को भी सम्भाले, स्वयं ही वकीलों की बहस को एकाग्रचित्त होकर सुने तथा सही–सही निर्णय दे सके यह कठिन है। इसलिए उसे समपेक्षित मुकदमों को यथाक्रम प्रस्तुत करने हेतु पेशकार अवश्य रखना पड़ता है। पेशकार के लिए भी लिपिक के बिना फाइलें व्यवस्थित रखकर प्रस्तुत कर सकना असम्भव है तथा बिना चतुर्थ श्रेणी न्यायाधीश के सामने उपस्थिति अपेक्षित है बतलाना कठिन है।

कहने का भाव यह है कि संसार को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए भगवान् ने कर्मानुसार नितान्त अपेक्षित चार वर्ण बनाने तथा प्रत्येक के लिए कर्तव्य कर्म का निर्देश किया जो जिसके लिए कर्त्तव्य कर्म है वही उसका शास्त्रविहित कर्म है।

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्‌गीता में लिखते हैं कि–

शमो दमस्तपः शौचं
क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं
ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

जिसका भाव यह है कि ब्राह्मण मात्र के लिए स्वाभाविक रूप से सन्तोषी होना जितेन्द्रिय होना, तपस्वी होना, मन में, वचनों में तथा कर्मों में पूर्ण पवित्रता रखना, सहनशील होना, सर्वथा नम्रता रखना व सरल प्रकृति होना, तत्वज्ञानी होना तथा ज्ञान के अनुरूप साधना करके तत्वों का साक्षात्कार करते हुए विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न होना और इन सभी विशेषताओं के साथ–साथ वेदों तथा वैदिक 'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि' आदि आज्ञाओ के प्रति पूर्ण श्रद्धापूर्वक निष्ठा रखना एवं उनक' यथाविधि पालन करना ब्रह्मकर्म कहलाता है. इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करने पर पाप क भागी होता है। यदि आज भी उपर्युक्त वैशिष्ट्यों से युक्त स्वकर्त्तव्य पालन तत्पर कोई व ाठ ब्राह्मण उपलब्ध हो तो उसकी आराधना करने के लिए संसार सन्नद्ध रहता है किंतु खेद ; कि पूर्णतः नहीं अपितु आंशिक रूप से भगवत्प्रतिपादित ब्रह्मकर्म तत्पर ब्राह्मण भी सुदुर्लभ हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम एतदर्थ प्रयास करें कि यावच्छक्य अधिकाधिक अपने लिए निर्दिष्ट कर्म को सम्पन्न कर भगवदनुग्रह की सत्पात्रता प्राप्त करने हेतु प्रयास अवश्य करें। भगवान् स्पष्ट करते हैं कि–

न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतितात्त गच्छति।

भाव यह है कि कोई भी प्राणी यदि अच्छे मार्ग पर लग जाता है तो उसकी सद्गति होती है भला करने वाले का अन्ततोगत्वा भला ही होता है उसकी कभी भी दुर्गति नहीं हो सकती। इसीलिए भगवान् ने स्पष्ट किया है कि 'अनेक जन्म संसिद्धिस्ततोयाति परां गतिम्' साधना में लग जाने वाला व्यक्ति उत्तरोत्तर अपने सन्मार्ग पर अग्रसर होत रहता है तथा एक जीवन में नहीं तो दूसरे जीवन में, दूसरे में नहीं तो तीसरे जीवन में या इसके भी पश्चात् भावी किसी भी जीवन में सही, वह उत्कृष्ट गति अर्थात् मोक्ष को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार से सांसारिक प्राणी गंगा स्नान के लिए उसके सही रास्ते पर चल पड़ता है तो वह धीरे–धीरे चलता हुआ भी किसी न किसी दिन अपने लक्ष्य गंगा स्नान से लाभान्वित हो ही जाता है तथा यदि वह गन्तव्य स्थान की दूरी का विचार करके तदर्थ प्रवृत्त ही नहीं होता है तो वर्षों तक भी उससे वंचित ही रहता है। उसी तरह से मुमुक्षु साधक भी सुदृढ़ विचार करके मुक्ति मार्ग में लग जाता है तो शनैः शनैः जन्म जन्मान्तरार्जित दुष्कर्मों के क्षीण होने पर मानव मात्र के परम लक्ष्य मुक्ति लक्ष्य को सुनिश्चित रूप से प्राप्त कर ही लेता है।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभतेनरः।

श्रीमद्भगवद्गीता के उपर्युक्त श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण ने क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के कर्त्तव्य कर्मों का निर्देश किया है अर्थात् क्षत्रिय मात्र का स्वाभाविक रूप से शूरवीर होना, तेजस्वी होना, धैर्यशाली होना पूर्ण चातुर्यपूर्वक राज्य का संचालित करना युद्ध की भीषण स्थितियों में भी अपनी जान बचाकर न भागना तथा देश एवं देशवासियों की सुरक्षा प्रदान करना, अनावश्यक संकलन नहीं करते हुए देश की अभ्युन्नति एवं नागरिकों के सार्वजनिक हितार्थ विभिन्न संस्थाओं व व्यक्तियों को अभिप्रेत दान देना, ईश्वर की सत्ता एवं उपास्यता के विषय में सर्वथा देवविषयक रतिभाव रखना सच्चे क्षत्रिय की पहिचान है। भाव यह है कि क्षत्रिय के लिए उपर्युक्त कर्त्तव्य कर्म का विधिपूर्वक पालन किया जाना सर्वथा समभिप्रेत है। ऐसे क्षत्रिय के हाथ में ही देश की सर्वांङ्गीण सुरक्षा सम्भव है।

इसी प्रकार से कृषि कर्म करना, गोपालन– कर्म करना एवं सम्पूर्ण भूमण्डल पर जहाँ–जहाँ जो–जो भोग्य पदार्थ समधिक मात्रा में समधिगत होते हैं उन्हें जहाँ–जहाँ उनकी आवश्यकता हो वहाँ–वहाँ पहुँचाकर निखिल सांसारिकों की सुव्यवस्था करना इस तरह का व्यापार कर्म ही वैश्य का शास्त्रविहित कर्म होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य इन तीनों वर्णों की समपेक्षित सेवा करते हुए ब्राह्मण को पुण्य कर्म करने योगदान कर पुण्य का भागी होना क्षत्रिय को पूरे देश की सुरक्षा हेतु सेवा करते हुए देशवासियों की सुरक्षा से प्राप्त होने वाले पुण्य का लाभ प्राप्त करना तथा वैश्यों द्वारा क्रियमाण कृषि, गोपालन एवं व्यापार में योगदान करते हुए सभी सांसारिकों को यथास्थान यथापेक्षित वस्तु उपलब्ध करवाने के व्यापार कर्म में योगदान करते हुए निखिल व्यवस्था में सहभागी बनना शूद्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म है।

जिस तरह से अपने शरीर में शिर बाहु, मध्यभाग एवं पैर विभिन्न सेवाओं द्वारा अपनी जीवन यात्रा को सहज बनाते हैं। उसी प्रकार से चारों वर्ण अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करते हुए परस्पर एक–दूसरे के पूरक बनते हैं तथा पारस्परिक सौमनस्य से प [illegible] गी स्वेष्ट सिद्धि द्वारा सुखी रहते हैं।

शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्मों का विधिपूर्वक पालन भी यदि आसक्ति भाव से किया जाता है तो ये कर्म भी संसार के प्रपंच में फँसाने वाले बन्धन का कारण बन जाते हैं तथा केवल कर्त्तव्य बुद्धि से अनासक्त भाव से निर्लिप्त रहते हुए किये जावें तो पूर्वसंचित कर्मों के बन्धनों को काटकर मुक्ति के मार्ग पर पहुँचाने वाले होते हैं। 'न तितिक्षा सममस्ति साधनम्' त्याग करने की इच्छा से बढ़कर या उसकी तुलना करने योग्य भी और कोई साधन हो ही नहीं सकता।

वस्तुतः पुरुष तत्व चेतन आत्मा तो सर्वथा निर्गुण निराकार ही होता है। और निर्गुण निरेन्द्रिय तथा निराकारता के कारण ही उसके द्वारा कभी भी कोई भी कर्म किया ही नहीं जा सकता। ये कर्म तो रजोगुण का ही धर्म है, इसलिए गुणातीत चैतन्य द्वारा कैसे सम्भव है। ये सम्पूर्ण कर्म त्रिगुणमयी प्रकृति के ही हैं मैं तो शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला शुद्ध चैतन्य मात्र हूँ, इस प्रकार की अनुभूति हो जाने पर कर्म के प्रति स्वत्व निवृत्त हो जाता है। क्योंकि जब मैं नित्य ही शुद्ध–बुद्ध एवं मुक्त हूँ तो फिर शरीरेन्द्रियादि मेरे है ही नहीं, और इनके द्वारा ही सम्पूर्ण कर्म किये जाते हैं। अतः वे कर्म भी मेरे नहीं, मैं तो पद्मपत्र मिवाम्भसा के न्याय से सर्वथा निर्लिप्त भाव से रहने वाला सर्वविविध कर्म बन्धनों से मुक्त विशुद्ध केवल चैतन्यस्वरूप सर्वथा मुक्त हूँ। सांख्य सूत्र है 'विमुक्तविमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य' भगवान कपिल कहते है कि पारमार्थिक रूप से सर्वथा मुक्त रहने वाले पुरुष तत्व में भी जो विषयाकाराकारित बुद्धि के प्रतिबिम्बन सामर्थ्य से बुद्धि के सुख–दुःख मोह की अनुभूति होती है उसकी सर्वथा मुक्ति हो सके इसी के लिए प्रकृति की प्रवृत्ति है।

**रूपैः सप्तभिरात्मानमात्मनैव बध्नाति प्रकृतिः।**
**विमोचयति च केवलेनैकरूपेण।।**

इस कारिका के द्वारा ईश्वर कृष्ण ने स्पष्ट कर दिया है कि धर्म कर्म, वैराग्य कर्म, ऐश्वर्य कर्म, अधर्म कर्म, अज्ञान कर्म, अवैराग्य कर्म तथा अनैश्वर्य कर्म इन सात प्रकार के कर्मों के द्वारा प्रकृति अपने आपको बन्धनों में डालती है तथा एक ज्ञान कर्म के द्वारा स्वयं अपने आपको मुक्त करती है। इस तरह से सम्पूर्ण कर्म पुरुष के सान्निध्य मात्र से प्रकृति द्वारा ही किये जाते हैं। पुरुष द्वारा कुछ भी नहीं। भगवद्गीता में भी भगवान कहते है कि–

**प्रकृतेः क्रियमाणानिऽगुणैः कर्माणिसर्वशः।**
**अहङ्कार विमूढात्मा– कर्त्ताहमिति मन्यते।।**

अर्थात् प्रकृति की साम्यावस्था में जब क्षोभ होता है तत्पश्चात् प्रकृतिस्थ तीनों गुणों के द्वारा ही निखिल कर्म किये जाते हैं किंतु अविद्याअस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेशात्मक पाँचों क्लेशों से युक्त प्राणी महदादि तत्वों से आत्म तत्व को विविक्त करके साक्षात्कार नहीं करने वाला मूढ़ प्राणी ही मैं ही इन सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला हूँ, ऐसा मानता है किंतु जिसे आत्मा के निर्गुणत्व का तथा गुणों की क्रियाशीलता का बोध हो जाता है वह तो जानता है कि ये सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों के ही है मेरा इनसे कुछ लेना देना नहीं है, ऐसा अनुभव करके सर्वथा निर्विकारी सर्वदा एकरस आत्मा स्वरूपावस्थिति को पा लेता है।

**'अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते'**

इस वेद वाक्य के अनुसार कर्म करना भी अनिवार्य है। प्राणी कर्मकाण्ड के द्वारा अपने पूर्व संचित कर्मों के पाप को प्रक्षालित करके तत्वज्ञान द्वारा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है

अर्थात् मुक्त हो जाता है। यही मुक्ति चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् मनुष्य योनि प्राप्त कर लेने वाले प्राणी का लक्ष्य है। अतः हर प्राणी का कर्तव्य है कि अपने–अपने कर्तव्य पालन हेतु परमपिता का हमें आदेश है ऐसा मानकर अपने–अपने कर्तव्य शास्त्रविहित कर्मों का विधिपूर्वक पालन करना ही चाहिए।

ऐसा करने से इस लोक में आज कर्मसांकर्य के कारण तथा एक–दूसरे के कर्तव्य कर्मों में पारस्परिक छीना झपटी के कारण बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं असन्तोष की समस्या का भी सर्वथा समाधान हो सकेगा एवं मानव मात्र विश्वबन्धुत्व की भावना अपनाकर ऐहिक एवं पारलौकिक परम शान्ति प्राप्त कर सकेगा। आशा है पाठक बन्धु सांकेतिक एवं अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत कर्म विषयक समीक्षण की ओर समुचित अवधान देकर इतने में सन्तोष करेंगे, क्योंकि यह विषय बहुत व्यापक है जिसे स्वल्पकाय लेख में समेटना कठिन ही है।

▣▣▣

# श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया

*सपनों में आकर नींद को, उड़ा जाते हो,*
*हर क्षण मुझे देखकर, मुस्कुराते हो,*
*छोड़ दिया घर बार प्रभु, तेरी फिराक में,*
*तो दूर जाकर क्यों? अब मुझे रूलाते हो,*
*अपनी दिल की बात मैं, कही नहीं कभी,*
*जलवों की बात गैरों से, क्या खूब सुनाते हो,*
*चाह है मेरी नजर, सिर्फ आप पर पड़े,*
*उलझनों में हरदम, फिर भी फंसाते हो,*
*राजेश सारी जिंदगी, गुजरे सवाल में,*
*है यहीं इनायत आपकी, जो हमें दिखाते हो।*

▣▣▣

# काम: सबसे बड़ा शत्रु एवं समाधान

जय नारायण राय

श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन के माध्यम से हम सांसारिक लोगों को स्वधर्म या सहज कर्म पर रहने का उपदेश दिया। प्रकृति ने जिस कर्म को हमारी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार हमें प्रदान किया है, वह हमारे लिए सहज कर्म है। उसी को स्वधर्म कहा गया है। स्वधर्म कर्म या सहज कर्म जन्मना नहीं है जैसे ब्राह्मण कुलोत्पन्न बालक की जन्म से ही व्यापार वाणिज्य और गोपालन में रुचि है: उसके लिए वैश्यकर्म को स्वधर्म कहा जायेगा। अर्जुन श्री कृष्ण भगवान के उपदेश को समझ रहा है किंतु कोई ऐसी चेष्टा उसकी समझ को बलपूर्वक आवरण में ढाँके दे रही है; उसी तथ्य को श्री कृष्ण भगवान नीचे के श्लोक में स्पष्ट कर रहे हैं:-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

(3/37)

अर्थात् 'यह काम है, यह क्रोध है, जो रजोगुण से उत्पन्न हुआ है। यह महापेटू और बड़ा पापी है। इस संसार में इसे अपना शत्रु जान।''

काम का अर्थ तृष्णा है। काम और क्रोध तृष्णा के दो रूप हैं। तृष्णापूर्ति में कोई अड़ंगा आता है, तो क्रोध उत्पन्न होता है। काम और क्रोध ही पाप में ठेलने वाले होते हैं। तृष्णा रजोगुण से पैदा होती है। तृष्णा एक विचित्र जंजीर है जो मुक्त होने पर भी पंगु के समान निश्चल ही रहता है। तृष्णा मिटती नहीं है। इसलिए काम महापेटू है। काम रूपी तृष्णा की भूख मिटती नहीं है। तृष्णा के वशीभूत व्यक्ति कोई भी पाप करने को उद्यत रहता है। कामनाओं का शमन कामनाओं को भोगने से नहीं होता। अत: कामनाओं एवं तृष्णा का त्याग ही साधक के लिए कल्याणकारी है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर छहों रिपुओं का मुखिया काम है, इसलिए श्री कृष्ण भगवान ने काम शब्द का प्रयोग सर्वत्र किया है। आगे श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को बताते हैं कि मनुष्य में विवेक है, पर यह काम उसके विवेक को उसी प्रकार ढंक लेता है, जिस प्रकार धुआँ अग्नि को, या मैल दर्पण को, या जेर गर्भ को। इसीलिए काम का आक्रमण होने पर मनुष्य में विवेक का, ज्ञान का प्रकाश मन्द हो जाता है।

काम का आश्रयस्थल इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि है। देही, देहाभिमानी जीव को कहते हैं। जिसे देह का अभिमान है, उसे तो काम सतायेगा ही। देहाभिमान को छोड़ देने पर काम अपने आप मर जायेगा। काम मन, इन्द्रिय और बुद्धि को इस प्रकार भरमा देता है कि काम की

भयंकरता को न देख उसकी मोहकता में लोग फँस जाते हैं और अन्ततोगत्वा जीवात्मा की दुर्गति कर देते हैं। इसलिए काम को दूर करना अनिवार्य है। पर यह तभी हो सकता है, जब उसे इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अलग किया जाये। इन्द्रियों के माध्यम से काम का प्रवेश मन और बुद्धि में होता है, इसीलिए पहले इन्द्रियों का नियमन होना चाहिए. श्री कृष्ण भगवान ने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा की जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठता साधना की दृष्टि से दिखाया है। इसलिए श्री कृष्ण भगवान ने दुरासद अर्थात् दुर्जय कामरूप शत्रु को मारने का आदेश देते हैं। इस आदेश में उनका मन्तव्य है कि पहले आत्मविचार करो और विचार के द्वारा आत्मा तक पहुँच जाओ, यह जान लो कि आत्मा के चैतन्य से ही बुद्धि–मन–इन्द्रिय–शरीर सब चेतनावान से लगते हैं। काम का प्रभाव बुद्धि तक है। अतः जब तक बुद्धि से ऊपर नहीं उठा जायेगा, तब तक काम अपना प्रभाव डालता रहेगा, इसलिए बुद्धि से ऊपर उठ कर आत्मा में स्थिर होना पड़ेगा, इस प्रकार आत्मचैतन्य में स्थित हो कर बुद्धि और मन की चंचलता को शान्त करना होगा। बुद्धि व मन की चंचलता आध्यात्मिक साधना द्वारा शान्त करते हैं। आत्मा में स्थित होकर बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर को देखने से उनमें स्थित काम जल कर नष्ट हो जाता है। यह आत्मदृष्टि ही पुराणों में शिव की तीसरी दृष्टि के रूप में प्रसिद्ध है, जिसके खुलते ही काम जलकर राख हो जाता है।

▣ ▣ ▣

**असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।**

**धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।।**

(वन. 1/29)

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं हो पाते।

# जीव क्या है और अन्तर्यामी क्या है?

मोती राम गर्ग, अलुपुर (हरि.)

अविद्या कामना और कर्म से विशिष्ट, कार्य कारण उपाधि से युक्त जो आत्मा है, उसे बोलते हैं–संसारी जीव।

''जीव अनेक एक श्री कन्ता''

जिसको नरक का डर है, जो मरने के अनन्तर आत्मा का अस्तित्व मानता है, जो पाप पुण्य का लगाव मानता है, वही संसार से विरक्त हो कर के परमात्मा की ओर चलने की इच्छा करता है।

अन्तर्यामी क्या है? उसके ज्ञान का कभी लोप नहीं होता। उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान शक्ति जिसकी उपाधि है, वही हमारे हृदय में आत्मदेव के रूप मे छिपकर बैठा है। इस ज्ञान स्वरूप आवरण में छिपे हुए आत्मदेव का नाम अन्तर्यामी ईश्वर है। उसी को अक्षर कहते हैं। उसी को परमात्मा कहते हैं। यही हम सबकी आत्मा है। अविनाशी अक्षर ब्रह्म में न वायु है, न आकाश है, न तमस है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न कान है, उसमें बाहर भीतर एक अजत्व है। इसी अक्षरत्व में यह आकाश ओतप्रोत है।

अब आप आकाश का अपरोक्ष अनुभव कीजिए, इस परमात्मा के स्वरूप में, जो इस अक्षरत्व को जाने बिना हजारों वर्षों तक तपस्या करता है। उसको फल की प्राप्ति नही होती। जो अक्षर को जाने बिना मर जाता है। वह आत्मघाती कहलाता है।

कोई उसको अन्तर्यामी रूप से मानते हैं। यह सबकी आत्मा है, वह नित्य प्राप्त होकर भी अप्राप्त हो रहा है। परमात्मा के ज्ञान के बिना हजारों वर्षों की तपस्या, यज्ञ हवन भी निष्फल है। फल की प्राप्ति तो हो ही नहीं सकती। इस जीवन में उसका ज्ञान बहुत जरूरी है। इस शरीर से मनुष्य दुनिया के धन्धे तो सीख सकता है, अन्तरिक्ष में जा सकता है, लेकिन उसके भीतर क्या है? कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियाँ क्या हैं? अन्तःकरण कैसा है? यह नहीं जानता। जब तक हम यह सब जानेंगे नहीं तो मंजिल तक नहीं पहुँच पायेंगे। यदि इस जीवन में परमात्मा को जान लिया तो तुम्हारा जीवन सत्य है, नहीं तो सत्य की बात भी झूठी है।

–इति

# 'लल्ला ! बच्ची तो अपनी ही है'

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

उपरोक्त वाक्य हमारे, आपके एवं प्राणी मात्र के भाग्य विधाता अकारण दयालु श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए है। इन शब्दों को श्री आराध्यदेव जी ने कब, क्यों एवं किसलिए प्रयोग किया, यह इस कृपा प्रसंग को पढ़ने के बाद स्वतः स्पष्ट हो जायेगा। अपने आदरणीय भाई–बहनों एवं स्वयं अपनी श्री चरणों में श्रद्धा वृद्धि हो, इसी आशा को निमित्त बनाकर, इस कृपा प्रसंग को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रसंग बहुत समय पूर्व का है। उस समय हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री बी.एन. भारद्वाज जी एयर इन्डिया में एयर कमडोर के पद पर, देश की राजधानी दिल्ली में कार्यरत थे तथा श्री गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में उनकी अनन्य निष्ठा थी। आराध्यदेव जी महाराज जब कभी भी दिल्ली पधारते थे, तो प्रायः उन्हीं के यहाँ विश्राम एवं रात्रि निवास किया करते थे। उस समय तक अपने देश में विमान का निर्माण नहीं हो रहा था बल्कि विमान दूसरे देश से ही क्रय किये जाते थे। बोइंग सात सौ सात उन दिनों अमेरिका से एयर इन्डिया के लिए क्रय किया गया था। इस विमान की खासियत यह थी कि इसमें सात सौ यात्रियों के बैठने, खाने पीने एवं सोने की व्यवस्था थी। विमान को खरीद कर भारत आये अभी मात्र एक–डेढ़ महिने ही हो रहे थे कि आराध्यदेव का दिल्ली का कार्यक्रम बन गया। आराध्यदेव जी अपने पार्षद गणों के साथ दिल्ली पधारे एवं अपने प्रिय शिष्य श्री बी.एन. भारद्वाज जी के घर पहुँच गये। श्री आराध्यदेव जी को अपने घर पर आया देखकर श्री भारद्वाज जी एवं उनके पारिवारिक सदस्यों में आनन्द की लहर सी आ गयी। श्री भारद्वाज परिवार ने अतीव आनन्द एवं उत्साह के साथ श्री गुरुदेव भगवान एवं उनके साथ आये पार्षद गणों का आदर सत्कार किया। आराध्यदेव जी लगभग तीन दिनों तक आदरणीय भाई जी के यहाँ विराजमान रहे। आराध्यदेव जी, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अलौकिक कृपा चरित्र, अपने मुखारविन्द से इस परिवार के सदस्यों एवं उपस्थित जिज्ञासुओं को सुनाया करते थे। बड़ा ही आध्यात्मिक एवं कृपा वर्षा का समय चल रहा था।

इसी दौरान आदरणीय भारद्वाज जी के मन में यह भाव आया कि श्री गुरुदेव भगवान को यह नयी जहाज दिखला दूँ तो हमें काफी प्रसन्नता होगी। संकोचवश वे श्री गुरुदेव भगवान से यह निवेदन नहीं कर पाते थे। उनके मन में इस निमित्त प्रार्थना करने की कई बार कोशिश किये परंतु असफल ही रहे। अन्तर्यामी श्री गुरुदेव भगवान ने अन्ततः दूसरे दिन उनसे पूछ ही लिया, 'लल्ला कहो! क्या कहना चाहते हो, स्पष्ट बतलाओ। मैं जब से तुम्हारे घर पर आया हूँ,

यह देख रहा हूँ कि तुम कुछ कहना चाहते हो, परंतु संकोच वश नहीं कह पा रहे हो, अब तुम मेरी आज्ञा मानकर अपने मन के भाव बतलाओ?' श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा सुनकर श्री भारद्वाज जी ने प्रार्थना किया, 'हे भगवन्! हमारे देश में विदेश से खरीद कर बोईंग सात सौ सात विमान पहली बार आया है एवं मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपको उस जहाज को एक बार दिखला दूँ, आपकी कृपा से इस समय, उस एयर पोर्ट पर मैं ही इन्चार्ज हूँ। यही मेरी आप से प्रार्थना करनी थी।' उनके मन के पवित्र भावों को सुनकर आराध्यदेव ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'अच्छा लल्ला! यह बात तुम्हें हमसे पहले ही बता देनी चाहिए। खैर कोई बात नहीं, हम कल ही तुम्हारे बोइंग सात सौ सात विमान को देखने अवश्य-अवश्य एयर पोर्ट चलेंगे।' आराध्यदेव के मुखारविन्द से अपनी मनोवांछित बात सुनकर आदरणीय भारद्वाज जी मन ही मन आनन्दित होते रहे तथा खूब शान-शौकत से एयरपोर्ट ले जाने तथा ले आने के कार्यक्रम में लवलीन हो गये।

अगले दिन आराध्यदेव जी महाराज ने नैतिक कार्यक्रम से निवृत्त होकर श्री महाप्रभु जी की आरती की, तदन्तर श्री गीता पाठ किया एवं उसके बाद पाठ किये गयेअध्याय का रहस्य उपस्थित जिज्ञासुओं को सरल एवं सुबोध भाषा में समझाया। इसके बाद महाप्रभु जी महाराज का भोग लगने के बाद भोजन किया एवं उसके बाद थोड़ा आराम किया। दोपहर बाद अपने पार्षदगणों के साथ कार द्वारा आदरणीय भारद्वाज जी के साथ विमान देखने के निमित्त एयर पोर्ट पहुँच गये। श्री भारद्वाज जी ने आगे-आगे चलकर, आराध्यदेव एवं उनके साथ आये पार्षदगणों का मार्ग संकेत किया। श्री भारद्वाज जी की अगुवायी में श्री गुरुदेव भगवान अपने पार्षद गणों के साथ जहाज के अन्दर प्रवेश किये। जहाज के अन्दर जाकर आराध्यदेव जी ने भाई श्री भारद्वाज जी से अपने मुखारविन्द से कहा, 'लल्ला! निश्चय ही जहाज देखने लायक है एवं तुमने यह जहाज हमें दिखाकर बड़ा अच्छा कार्य किया है।' श्री गुरुदेव जी महाराज ये वाक्य कह रहे थे एवं धीरे-धीरे जहाज को देखते हुए उसके अन्दर आगे बढ़ते जा रहे थे। आराध्यदेव धीरे-धीरे अपने पार्षदगणों एवं प्रिय शिष्य भारद्वाज जी के साथ चलते-चलते जहाज के अन्तिम छोर तक पहुँच गये, जहाँ एक एयर होस्टेज ने श्री गुरुदेव भगवान को नमस्कार अर्पित किया। उसने श्री गुरुदेव भगवान का बाया कर-कमल अपने दोनों पंजों के बीच लेकर अपने सिर से लगाकर प्रणाम करना आरम्भ किया एवं अनाथ नाथ उसके सिर पर अपना दाहिना वरद हस्त रखकर, चिर परिचित की तरह उससे अपनी वर दायिनी वाणी से कह रहे थे, मेरी प्यारी लल्ली! तुम कैसी हो? कब से यहाँ नौकरी कर रही हो? तुम्हारे माता-पिता कैसे हैं। जापान से तुम कब आयी हो? एवं यह बालिका अपना सिर नीचे किये हुए, आराध्यदेव से चिपटती हुई, उस नाथ के प्रश्नों का उत्तर दे रही थी। गाय की छोटी बछिया, जिस प्रकार अपनी माँ से लिपट जाती है एवं गाय उसे जिस अनेकों प्रकार से उससे प्रेम करती है, वैसा ही दृश्य उपस्थित हो गया था। वैसे श्री गुरुदेव भगवान के अगाध

प्रेम को शब्दों से वर्णित नहीं किया जा सकता, वह तो अवर्णनीय एवं अकथनीय होता है परंतु प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए उपरोक्त उदाहरण दिया गया है।

आराध्यदेव लगभग आधे घन्टे तक उस बालिका के सिर पर अपना दाहिना कर-कमल रखकर उसे आशीर्वाद देते रहे। पहले तो वह काफी प्रसन्न सी रही परंतु बाद में सिसक-सिसक कर रोने लगी। आराध्यदेव जी उसे लगातार समझाते रहे, नहीं लल्ली! मेरी प्यारी लल्ली! रोना नही चाहिए। श्री आराध्यदेव जी ने जब अपना दाहिना कर-कमल उसके सिर से हटाया तो वह अपलक अश्रुपूरित नेत्रों से श्री गुरुदेव भगवान को निहारती रही। उसकी वाणी अब प्रेम के कारण अवरुद्ध हो गयी थी एवं उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से अविरल अश्रुपात हो रहा था। श्री गुरुदेव भगवान ने अपने बांये हाथ को, जब उसके हाथों से हटाया तो वह जड़वत खड़ी हो, श्री प्रभु जी को निहार रही थी। उसको परिपूर्ण आशीर्वाद देने के बाद, अनाथनाथ, अपने पार्षदगणो एवं श्री भारद्वाज जी के साथ जल्दी-जल्दी चलकर विमान से बाहर निकल आये एवं सिढ़ियों के सहारे धराधाम पर आ गये। उसके बाद श्रीमुख ने श्री भारद्वाज जी से कहा कि चलो लल्ला! अब तुम्हारे घर चलते है। आराध्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री भारद्वाज जी, सबके साथ चलकर अपने निवास स्थान पर आ गये। श्री गुरुदेव भगवान ने आदरणीय भाई श्री भारद्वाज जी की मनोकामना तो पूर्ण कर दी, परंतु उनके मन में श्रद्धामय कौतुहल पैदा कर दिया।

श्री भारद्वाज जी के मन में यह भाव आया कि श्री गुरुदेव भगवान ने उस अपरिचित एयर होस्टेज को क्यों इतना प्यार किया एवं आशीर्वाद दिया। साथ ही यह भी कह दिया कि तुम जापान से कब आयी हो लल्ली? इसी उधेड़बुन में भाई भारद्वाज जी डूबते-उतराते रहे। जब इसका रहस्य जानने की जिज्ञासा प्रबल हो गयी तो उन्होंने आदरणीय बड़े गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र झा जी से, जो आराध्यदेव जी के पार्षदगणों में से एक थे, यह निवेदन किया कि भाई जी! श्री गुरुदेव भगवान से कृपया उस एयर होस्टेज के विषय में जानकारी लेने की कृपा की जाय। आदरणीय भाई श्री भुवनेन्द्र झा जी ने कहा कि अच्छा, समय देखकर प्रार्थना करेंगे।

उस दिन की सायंकालीन आरती के बाद, जब अन्य सभी आगन्तुक चले गये एवं मात्र गुरुदेव के पार्षदगण एवं श्री भारद्वाज जी सपरिवार उपस्थित थे, आदरणी श्री भुवनेन्द्र झा जी ने श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया कि गुरुदेव! भाई भारद्वाज जी जानना चाहते हैं कि विमानवाली एयर होस्टेज कौन थी, जिसे आपने काफी प्यार किया एवं आशीर्वाद दिया। श्री गुरुदेव भगवान अपनी मधुर मुस्कान से बोले, 'लल्ला! एयर होस्टेज थी, उसने प्रणाम किया एवं हमने उसे आशीर्वाद दिया।' तदन्तर श्री भारद्वाज जी ने श्री गुरु चरणों में प्रणाम निवेदित करके प्रार्थना किया कि गुरुदेव! आपने ही यह रहस्य हम लोगों को बतलाया है कि योगी का कोई भी कार्य निरुदेश्य नहीं होता, अतः मैं भी इस घटना के रहस्य की जानकारी

आपके मुखारविन्द से सुनना चाहता हूँ, कृपया बतलाने की कृपा की जाय। आदरणीय भाई श्री भारद्वाज जी के सविनय प्रार्थना को अनाथनाथ टाल न सके एवं बोले, 'लल्ला! बच्ची तो अपनी ही है। खान–पान एवं आचार–विचार संयमित न होने के फलस्वरूप किसी संस्कारवश जापान में पैदा हो गयी है। आज श्री प्रभु जी की कृपा से मैं तुम्हारे साथ विमान देखने गया एवं वह सामने आ गयी। देखते ही उसने हमें नमस्कार किया। मैं तो ठहरा उसका गुरुदेव। अतः मुझे जो कुछ भी उसके लिए करना था, मैंने आज कर दिया। श्री प्रभु कृपा से आज उसका काम बन गया। इतना कहकर श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी वाणी को विराम दिया।

अब आदरणीय भाई श्री भारद्वाज जी की समझ में यह रहस्य स्वतः स्पष्ट हो गया कि उनके मन में श्री गुरुदेव भगवान को विमान दिखलाने का भाव आराध्यदेव के संकल्प से ही आया था, क्योंकि आराध्यदेव को अपनी प्रिय शिष्या पर आज कृपा करनी थी, जो उन्होंने किया।

श्री गुरुदेव भगवान के यौगिक प्रचार कार्यक्रमों में भी कई बार ऐसी घटनायें अनाथनाथ की कृपाओं से देखने को मिली हैं कि वे करुणा सागर ट्रेन में अपने आसन पर विराजमान हो गये हैं, रेलगाड़ी चलने का सिग्नल भी हो चुका है, गार्ड ड्राइवर को हरी झंडी दिखा रहा है परन्तु रेलगाड़ी आगे नहीं बढ़ रही है। अचानक हमारा कोई गुरुभाई या गुरुबहन अथवा कोई श्रद्धालु, जिज्ञासु या महात्मा आकर आराध्यदेव जी को प्रणाम करता है, श्री गुरुदेव भगवान उसे आशीर्वाद देते हैं और उसके बाद रेलगाड़ी अपने गन्तव्य स्थान को रवाना हो जाती है। वाराणसी मण्डल के आदरणीय गुरुभाई बहन आराध्यदेव जी के दर्शनार्थ मुगलसराय स्टेशन के प्लेटफार्म नम्बर तीन पर उपस्थित थे। श्री गुरुदेव भगवान कलकत्ता का योग प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न कर कालका मेल से वापस श्री सिद्धगुफा सवांई धाम जा रहे थे। कालका मेल मुगलसराय स्टेशन के प्लेटफार्म नम्बर तीन पर आ गयी। सभी उपस्थित भाई–बहनों ने गगनभेदी जयकारों के साथ उनका स्वागत किया एवं माल्यार्पण किया। श्री गुरुदेव भवगान ने बारी–बारी से सबको आशीर्वाद दिया एवं फिर सामूहिक आशीर्वाद भी दे चुके। कालका मेल ट्रेन के जाने का समय भी हो गया परन्तु वह, गाड़ी चलाने की सब प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद भी अपने स्थान पर ही खड़ी रही। हमारे एक आदरणीय गुरुभाई श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी एडवोकेट, जो वाराणसी से श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ मुगलसराय स्टेशन के लिए चले थे, जाम में फंसने के कारण नहीं पहुँच पाये थे, तेज गति से चलते हुए प्लेटफार्म नम्बर तीन पर पहुँच गये, तदन्तर उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान को माल्यार्पण कर प्रणाम निवेदित किया एवं आराध्यदेव जी द्वारा उन्हें आशीर्वाद देने के बाद, कालका मेल तत्काल गन्तव्य स्थान के लिए रवाना हो गयी। श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी एडवोकेट अब इस नश्वर संसार में नहीं है परन्तु उपस्थित सभी गुरुभाई–बहनों को श्री गुरुदेव भगवान ने

स्पष्ट अनुभव करा दिया कि वे अपने प्रिय शिष्य, एवं हमारे आदरणीय गुरुभाई के लिए ही इस इम्पोर्टेन्ट ट्रेन को रोके हुए थे। ट्रेन की यात्रा आरम्भ करते समय, गुरुदेव भगवान की जै, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै की ध्वनि से पूरा स्टेशन गुंजायमान हो गया। जब तक हम लोग दिखलायी देते रहे आराध्यदेव अपने कर–कमलों द्वारा आशीर्वाद देते रहे। श्री प्रभु जी अपनी कृपाओं का चिन्तन सदैव बनाये रखने की कृपा करें, इसी प्रार्थना के साथ, कृपा प्रसंग यहीं विश्रामित है।

▣▣▣

# विनय – पद

मोहन स्वरूप, गोवर्धन

*मेरे गुरुवर मेरे सद्‌गुरु,*
*सबका बेड़ा पार करो।*
*दीन दु:खी जो आये शरण में*
*उसका बेड़ा पार करो।*
*कान्हा की मुरली में बाजत*
*सप्त स्वरों का ध्यान करो।*
*मेरे मालिक मेरे गुरुवर*
*सबका बेड़ा पार करो।।*
*मेरे गुरुवर .....*

*अलख निरंजन रूप तुम्हारा*
*नटवर के संग रास करो,*
*सत्य सनातन मेरे गुरुवर,*
*सबको बेड़ा पार करो।*
*गोवर्धन गिरिराज तलहटी,*
*नित्य कृष्ण संग वास करो।*
*'चन्द्रमोहन' हैं मेरे गुरुवर,*
*'रामचन्द' का ध्यान करो।*

*कृष्ण सखा की बात वही है,*
*नित्य नयी पहिचान करो।।*
*मेरे गुरुवर .....*

*कृष्ण चन्द ये सम हैं दोनों,*
*नित्य इन्हें प्रणाम करो।*
*प्रात: होत उठ जाओ धाओ इनको,*
*अपना बेड़ा पार करो।*
*आशा तृष्णा पास न आवे,*
*ऐसा कुछ विधान करो।*
*जनम–जनम की मैली चादर,*
*इसका भी कुछ ध्यान करो।*
*शक्तिपात से उज्जवल करा दो,*
*मेरा बेड़ा पार करो।*
*अधम–अनाड़ी पापी जग में,*
*इनका बेड़ा पार करो।।*
*मेरे गुरुवर .....*

▣▣▣

# भगवान पतञ्जलि देव

प्रो. डॉ. श्री रामशरण सिंह, बी.एच.यू.

आप जानते ही है कि विदेशी विद्वानों को हमारे ऋषि मुनियों के चमत्कारिक ज्ञान से सदा अनभिज्ञता रही है। उन्हें हमेशा संदेह बना रहा कि एक ही व्यक्ति, एक ही साथ, ज्ञान विज्ञान और साहित्यदर्शन की विभिन्न शाखाओं का अधिकारी विद्वान् कैसे हो सकता है? लेकिन भारतीयों के लिए यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। पतजलि भारतीय चिन्तन और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हो चुके हैं। इसी से पतंजलि को महामुनि (प्रवर मुनीनाम्) की पदवी भी प्रदान की गई है। जैसे–

**योगेन चित्तस्य, पदेन वाचाम्,**
**मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।**
**योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनाम्,**
**पतंजलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।**

महामुनि पतंजलि, जिन्होंने योग सूत्र और व्याकरण महाभाष्य की रचना की है चरक–संहिता का प्रतिसंस्कार भी उन्होंने ही किया था, अर्थात् पतंजलि का ही दूसरा नाम चरक भी है, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनको भ्रम है कि पतंजलि और चरक संहिता का रचयिता, चरक दोनों अलग–अलग व्यक्ति थे। उनका काल भी विवादास्पद प्रश्न है। डा. सम्पूर्णानन्द का कहना है कि वह गौतम बुद्ध के पश्चादवर्ती थे। इसलिए पाठकों की इस भ्रांति को दूर करने के लिए और पतंजलि के अनुपम गुणों से आकृष्ट होकर मैं इस सार्वभौम पत्रिका मे उस महापुरुष के बारे में कुछ लिखने का साहस कर रहा है। हमारे नायक, महामुनि जय–पतंजलि का पूर्व परिचय इस प्रकार है कि इन्होंने व्याकरण में :–

1. महाभाष्य की,

2. योग–शास्त्र में, योग–दर्शन की रचना की थी और आयुर्वेद में–

3. चरक–संहिता का प्रतिसंस्कार भी किया था। जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान श्री विज्ञान–भिक्षु द्वारा ग्रन्थ योग–वार्तिक के प्रारम्भ में श्री पतंजलि को ऊपर वाले श्लोक में किये गये नमस्कार से प्रकट होता है। इसी श्लोक के 'प्रवर मुनीनाम्' वाक्य के अनुसार हमने मुनि जय पतंजलि के साथ महामुनि विशेषण जोड़ा है। दूसरा यह कि ये राजा पुण्यमित्र के समकालीन एवं राजपुरोहित भी थे। क्योंकि महाभाष्य में स्पष्ट लिखा है कि 'पुष्यमित्रं यजामहे' व 'पुष्यमित्र याजयाम:'। इसके अलावा अन्य इतिहासों से भी यह विदित होता है कि

इन्होंने पुष्यमित्र का दो बार यज्ञ किया था।

ये चरक सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण 'चरक' तथा पतंजलि में पढ़ने या पतंजलि शिक्षा संस्थान के एक आचार्य होने से 'पतंजलि' कहलाते थे। चरक संहिता के अनुसार इनका वास्तविक नाम जय था और इनकी माता का नाम जया एवं पिता का नाम विजय था। यह काश्मीर के निवासी और कात्यायन ऋषि के पालित पट्-शिष्य थे। अगली पंक्तियों में इसके विषय में कुछ प्रकाश डाला जायेगा। महामुनि पतंजलि को शास्त्रों में अनेक नामों से पुकारा जाता है। जैसे- 1. शेष, 2. शेषनाग 3. शेषावतार, 4. फणी, 5. फणिपति, 6. फणिभृत, 7. अहि, 8. अहिपति, 9. वासुकि, 10. महाभाष्यकार, 11. कोषकार, 12. पदकार 13. चूर्णीकार, 14. शब्दावतार 15. गोनर्दीय 16. गोणिका पुत्र, 17. चरक, 18. पतंजलि और 19. जय भी इन्हीं का नाम था।

पुस्तकों में पायी गयी सामग्री के अनुसार महामुनि पतंजलि का स्वरूप कुछ इस प्रकार का था- गौर वर्ण, तेजो पूर्ण मुख मण्डल, उतंग बदन, चाणक्य की भांति पीठ की ओर लटकती हुई लम्बी सुनहारी शिखा, प्रशस्त भाल जिस पर लगी केशर, कस्तूरी, चन्दन आदि द्वारा निर्मित त्रिपुण्ड, गरुड़ की तरह नुकीली नासिका, पतले-पतले लाल ओंठ, सिर पर सुनहरी जटा, साँप की तरह पतली लपलपाती जीव्हा, उनकी गोल, लम्बी तथा गठीली भुजायें प्रतापी होने एवं लम्बे-लम्बे कान दृढ़ मनोबल के ज्ञापक थे, उनकी आँखें शेर बबर की आँखों की तरह बड़ी, चमकीली व तेज फैलाने वाली थी, शब्द शास्त्र पर उनका इतना अधिकार था कि एक-एक शब्द की व्युत्पत्ति, ध्वनि, अर्थ एवं भावार्थ की उन्होंने पूरी-पूरी खोज कर ली थी, उनके समीप प्रत्येक शब्द सजीव देहधारी था, शब्दों का उच्चारण उनका इतना शुद्ध, स्पष्ट, अद्‌भुत और चमत्कारपूर्ण था कि उनके मुखारविन्द से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अपने अर्थ के साथ गगन-मण्डल में अर्द्धनारी नटेश्वर या पविती-परमेवरो की तरह अपने आनन्द नृत्य में तल्लीन-सा जान पड़ता था।

पुराणों में महामुनि पतंजलि के अवतरण के सम्बन्ध में अनेक कथायें मिलती हैं उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं-

**भाव प्रकाश-**

मत्स्यावतार के समय, जबकि भगवान विष्णु वेदों का उद्धार कर रहे थे, तब शेषनाग भी वहीं पर थे और उन्होंने भी अन्य वेदों के साथ-साथ अथर्ववेद के उपवेद, आयुर्वेद का भी अच्छी तरह अध्ययन कर लिया था।

आप जानते ही हैं कि मुनि-योगी कितने दयालु हृदय के होते हैं, एक समय इनका ध्यान विविध रोगों से पीड़ित मानवता की ओर गया और इनके हृदय में उसकी दीन हीन दुःखी दशा देखकर उसके कल्याणार्थ व रोगमुक्त करने के उद्देश्य से समीपस्थ तपस्या

करने वाले एक विद्वान् ऋषि का शिष्य होने का निश्चय इन्होंने कर लिया और सर्प के बच्चे के रूप में ही उस ऋषि के आश्रम में प्रवेश कर गये, जैसा कि भावप्रकाश में दिया है–

यदा मत्स्यावतारेण, हरिणा वेद–उद्धृतः।
तदा शेषश्च तत्रैव, वेदं सङ्गमवाप्तवान्।।
स भांति चरकाचार्यो, वेदाचार्यो यथा दिवि।

**पतंजलि चरितम्–**

श्री कविराज रामभद्र दीक्षित–कृत, 'पतंजलि चरितम्' के अनुसार दूसरी कथा यह है कि– एक दिन भगवान विष्णु शंकर के आनन्द नृत्य को देखने में शरीर तक की सुध–बुध भूल गये थे जिससे शेषनाग को उनके शरीर का भार असह्य मालूम पड़ने लगा। इसलिए इन्होंने भगवान से इसका कारण पूछा। भगवान ने उत्तर दिया कि मुझे भगवान शंकर का आनन्द–नृत्य इतना अच्छा लगा कि मैं सुध–बुध भूल गया जिसके कारण मेरा शरीर तुम्हें भारी लगा।'

इस तरह स्वयं भगवान् विष्णु के मुखारविन्द से शंकर के इस चमत्कार पूर्ण आनन्द–नृत्य की प्रशंसा सुनकर शेषनाग के मन में भी मनुष्य शरीर धारण कर इस नृत्य को देखने की प्रबल इच्छा हुई।

इसलिए समाधि में उन्होंने भगवान शंकर की आराधना की, जिससे शंकर ने प्रसन्न होकर शेषनाग से कहा कि– तुम शीघ्र मनुष्य का शरीर धारण करके संसार में जाओ और वहाँ जाकर पाणिनी की अष्टाध्यायी पर जो कात्यायन लघुभाष्य (वार्तिक) लिख रहे हैं उस पर अपना महाभाष्य लिखकर चितम्बरपुर में विद्यार्थियों को पढ़ाना प्रारम्भ कर दो। तब मैं पार्वती के साथ नन्दी पर सवार होकर वहाँ आऊँगा और अपना आनन्दनृत्य तुम्हें दिखाऊँगा।

शंकर भगवान की इस आज्ञा को पाकर शेषनाग बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त अपने मनुष्य रूप में प्रकट होने के लिए किसी पवित्र स्थान व माता की खोज में इधर–उधर चल पड़े। चलते–चलते वे जब तामस बन पहुँचे तब वहां एक स्थानपर पुत्र प्राप्ति की कामना से सूर्य भगवान की तपस्या में पीली पड़ी हुई गोपिका नाम की एक ऋषि–कन्या उनको दृष्टिगोचर हुई। बस इसीको अपनी माता चुनकर इन्होंने पुत्र बनने का निश्चय कर लिया।

एक दिन मध्यान्ह को वह गोपिका जब सूर्य भगवान की ओर अपनी अंजलि भरकर अर्घ्य उछालने लगी, तब उसी अर्घ्य के साथ ही अपने सर्प के रूप को त्याग कर मानव शिशु के रूप को धारण कर वह गोपिका के पैरों के पास आकर गिर पड़े। गोपिका ने समझा कि यह शिशु सूर्य भवगान ने खुश होकर ही मुझे दिया है यह समझकर उसने उस सुनहरे शिशु को गोद में उठाकर गले से लगा लिया और उससे बोली कि 'क्योंकि पुत्र तुम मेरी अंजलि पर गिरे हो इसलिए मैं तुम्हारा नाम पतंजलि रखती हूँ तथा आशीर्वाद देती हूँ कि तुम अपनी

तपस्या से अद्वितीय विद्वान् बनोगे।'

**श्री नागोजी भट्ट**

व्याकरण के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री नागोजी भट्ट ने 'शब्देन्दुशेखर' की टीका में लिखा है कि 'गोनर्द तीरे तपस्यतः कस्यचिद् ऋषेरञ्जलित पतिते' यानी एक बार गोनर्द नदी के तीर में तपस्या करने वाले किसी ऋषि की अंजलि में एक शिशु कहीं से आ पड़ा, जिसको वह ऋषि आश्रम में ले गये और वहीं पर उन्होंने उसका पालन-पोषण कर उसे विद्याध्ययन भी कराया।

पढ़ लिखकर जब वह शिष्य बड़ा व विद्वान हो गया, तब उसकी प्रतिभा पर प्रसन्न होकर उस ऋषि ने उसको आदेश दिया कि 'तुम मेरे इस लघुभाष्य पर महाभाष्य लिखो।' इसके पश्चात् गुरु की इस आज्ञा के अनुसार उस शिष्य ने श्री कात्यायन के लघुभाष्य (वार्तिकों पर) पर अपना एक महाभाष्य लिखा। ऋषि की अंजलि में पड़ने के कारण इसी महाभाष्यकार विद्वान् का नाम पतंजलि पड़ गया।

इन पूर्वोक्त कथाओं में श्री नागोजीभट्ट द्वारा 'शब्देन्दुशेखर' में उद्धृत, यही अन्तिम कथा ही आनुषंगिक मालूम पड़ती है। कारण कि–

1. स्कन्दपुराण के अनुसार महर्षि कात्यायन ने सरस्वती नदी के तीर पर पैर के एक ही अंगूठे के सहारे खड़े-खड़े सौ वर्ष तक घोर तपस्या की थी। मालूम होता है कि सैकड़ों वर्षों तक इसी गोनर्द क्षेत्र में निवास करने के कारण ही महर्षि कात्यायन का नाम गोनर्दीय हो गया है, जैसा कि महाभाष्य में पतंजलि ने लिखा है कि 'गोनर्दीयस्त्वाह।'

2. जैसा कहा गया है कि उस तपस्वी ऋषि ने अष्टाध्यायी पर लघुभाष्य (वार्तिक) लिखा था। इससे भी अनुमान होता है कि वह वार्तिकार (लघुभाष्यकार) ऋषि कात्यायन ही थे। जैसा महाभाष्य में पतंजलि ने स्वयं स्वीकार किया है कि वार्तिककार कात्यायन ही थे।

इसलिए गोनर्द नदी (सरस्वती) के किनारे पर सौ साल तक लगातार तपस्या करने, गोनर्दीय होने तथा वार्तिककार कहाने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि वह गोनर्द नदी के तीर पर तपस्या करने वाला और पतंजलि को अपनी अंजलि में प्राप्त करने वाला तथा उससे अपने लघुभाष्य पर महाभाष्य लिखवाने वाला 'कस्यचिद् ऋषि' कात्यायन ही थे और इन्होंने ही पतंजलि का पालन-पोषण किया था तथा विद्याध्ययन भी कराया था। अतः कात्यायन ही महाभाष्यकार पतंजलि के पालक तथा गुरु भी थे।

अतः पूर्वापर प्रसंग को देखते हुए और वास्तविकता पर ध्यान देने से यही नागोजी भट्ट वाली कथा सत्य प्रामणित होती है।

# महायोगी गोरक्षनाथ एवं हठयोग

डॉ. श्री विजय सिंह, रीडर–गोरखपुर, एम.एस.सी., पी.एच.डी.

भारत का यथार्थ स्वरूप भारतीय महाज्ञानी योगेश्वरों एवं सतियों के जीवनवृत्त में ही निहित है। जिन्होंने समयानुकूल दु:खसंतप्त, हिंसा–द्वेषजर्जरित, विश्व के सामने आदर्शमय, साम्य, ऐक्य, अहिंसा आध्यात्मिक आनन्द और प्रेम की एक अनोखी उदार वाणी का प्रचार किया। ऐसे महापुरुषों में महायोगी गोरक्षनाथ जी अग्रगण्य हैं। यद्यपि आपका जन्मकाल विवादास्पद है। फिर भी धार्मिक ग्रंथों में वर्णित विभिन्न कथायें त्रेता युग से सम्बंधित है। महायोगी गोरक्षनाथजी भगवान व्यास श्रीहनुमान परशुराम इत्यादि की तरह अमर है। समय–समय पर अनेकों अवतार ग्रहण करते रहते है। आज भी काश्मीर से दक्षिणांचलों तक भारतीय जनता पूर्ण रूपेण महायोगी गोरक्षनाथ जी की अलौकिक जीवन कथाओं से परचित है। महायोगी भगवान शिव के अवतार हैं। आपके गुरुदेव महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ जी हैं। श्री गोरक्षनाथ की अमरता के अनेक प्रमाण मिलते हैं। समयान्तर से कई लोगों को महायोगी के दर्शन प्राप्त होने की कथा कई जगह मिलती है। कबीर जी से गोरक्षनाथ जी की खूब योग एवं ज्ञान चर्चा हुई थी। इस प्रकरण का विस्तृत वर्णन 'गोरखनाथ की गोष्ठी' में वर्णित है। वार्तालाप वाले प्रबन्ध में लिखा है:

*आदिनाथ के नाती, मच्छेन्द्रनाथ के पूत।*
*मैं योगी गोरख अवधूत।।*

अर्थात् 'मैं भगवान सदाशिव (आदिनाथ) के शिष्य मत्सयेन्द्रनाथ जी का शिष्य योगी गोरख हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने कबीरजी को अपना परिचय दिया है। आपके जन्म के विषय की कथा संक्षेप में इस प्रकार है–एक बार महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ जी भिक्षा के लिए एक ग्राम में गये। वहाँ एक परम साधु भक्त ब्राह्मण की धर्म पत्नी जो नि:संतान थी, उसने बड़ी श्रद्धापूर्वक महायोगी को भिक्षा करायी। महायोगी ने कृपावश होकर उसे थोड़ी सी विभूति प्रदान की और कहा कि, इस विभूति के सेवन करने से तुम्हें यथा समय एक पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ के चले जाने पर वहाँ एकत्रित गंवार स्त्रियाँ उस ब्राह्मणी से परिहास करने लगीं कि कहीं विभूति से भी पुत्र उत्पन्न हुआ है। इससे यह प्रकट होता है कि उस समय योग विद्या का प्रभाव लोप हो चुका था। इसी कारण आगे चलकर महायोगी गोरक्षनाथ जी ने योग का प्रचार भारत के घर–घर में एवं सुदूरवर्ती अनेक देशों में फैलाया था। स्त्री–अपवाद से डरकर उसी देवी ने उस महाप्रसाद को गोरक्षा (जहाँ गऊ का गोबर इकट्ठा किया जाता है) में फेंक दिया। बारह वर्ष के पश्चात् श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी फिर उसी

ग्राम में लौटे और उसी ब्राह्मणी के द्वार पर भिक्षा के लिए गये। उन्होंने पूछा–तेरा पुत्र कहाँ है? जब उन्होंने यह सुना कि स्त्री ने विभूति नहीं खाई बल्कि फेंक दी तो महायोगी बोले– मेरी सिद्ध विभूति से निश्चय ही एक अलौकिक पुरुष उत्पन्न हुआ है, जहाँ तूने विभूति फेंकी थी वहाँ चलकर देख। गोरक्षा के पास पहुँचकर श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने ज्योंही पुकारा त्योंही एक बारह वर्ष का बालक उसी गोरक्षा से प्रकट हुआ। इसी गोरक्षा में से अलौकिक ढग से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम गोरक्षनाथ पड़ा।

महायोगी मत्स्येन्दनाथ जी उसी समय बालक को लेकर जंगलों में चले गये। बद्रिकाश्रम के जगलों में श्री गोरक्षनाथ जी ने 12 वर्ष तक घनघोर तप किया इसके उपरान्त गुरु आज्ञा से बड़ा ही विलक्षण योग प्रचार किया। भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में आपके नाम से सम्बन्धित स्थल आज भी हैं। पेशावर में गोरक्षक्षेत्र', द्वारिका के निकट का 'गोरक्षक्षेत्र', नेपाल में पशुपतिनाथ, हरिद्वार का अति श्रद्धेय सुरंग, कलकत्ता के पास दमदम के निकट 'गोरखबासली' पंजाब में झेलम जिला में गोरख टीला, गिरनार में गोरख मढ़ी, गोवा के निकट गोरखकाजुली, नेपाल के उत्तर में चन्दनाथ। यही नहीं अपितु तिब्बत, काबुल, अफगानिस्तान, विलोचिस्तान, पिनांग आदि में गोरक्षनाथ जी का प्रभाव स्थल विद्यमान है। भगवान शिव के अवतार संन्यासी शंकराचार्य के समान आप भी शिव के अवतार ही हैं।

**प्रचार प्रणालीः** – संस्कृत भाषा में श्रीगोरक्षनाथ जी द्वारा लिखित ग्रंथ गोरक्ष–संहिता, गोरक्ष–कल्प, गोरक्षशतक, गोरक्ष सहस्त्र योग चिन्तामणि, योग महिमा, योग सिद्धान्त पद्धति इत्यादि हैं जिनमें योग विद्या के सार तत्वों के ऊपर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। कुछ लोग 'नाथ–योग' (गोरक्षनाथ द्वारा प्रचारित योग) को मात्र 'हठ–योग' की कष्ट प्रद साधना के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। यथार्थतः 'हठयोग' द्वारा सारे समाज में महायोगी गोरक्षनाथ जी द्वारा योग विद्या की प्रतिष्ठा होनी सहज सम्भव नहीं थी। क्योंकि समाज के सभी स्तरों में योग 'हठयोग' के रूप में प्रभवित नहीं हो सकता है। इसीलिए परम कारुणिक योगिराज 'गोरक्षनाथ जी' ने भी योग विद्या का सरलीकरण कर प्रदेशों में जन भाषा के माध्यम से ही लोगों को योग–महिमा का ज्ञान कराया। वे स्वयं तथा अपने पूर्ण सिद्ध शिष्यों के साथ घूम–घूमकर अपने और उन शिष्यों के जीवन को ही आदर्श के रूप में सबके सम्मुख उपस्थित करते थे। इसीलिए राजा प्रजा, निर्धन मूर्ख, सदाचारी, कदाचारी, पुरुष, नारी, ब्राह्मण तथा अपवाद स्वरूप निम्न आश्रमों के जन भी योगामृत से कृतकृत्य हुए। सभी वर्ग के लोग आगे चलकर योगियों को गुरु और रक्षक के रूप में श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखते थे। इसी प्रभाव के कारण राजमहिषी मयनावती एवं डोम का कर्म करने वाला 'हाड़ी सिद्ध' आपस में गुरुभाई बहन का सा ही प्रेम व्यवहार रखते थे। राजपुत्र श्री गोविन्दचन्द्र इन्हीं 'हाड़ी सिद्ध' के शिष्य थे।

दूसरी ओर महायोगी गोरक्षनाथ जी संसार के ऐसे प्राणियों को जो संसार त्यागी,

वैराग्यवान, विशुद्ध चित्त भिक्षु थे उन्हें निर्वाण प्रद समाधि कौशल की शिक्षा देते थे तथा साधारण गृहस्थों को यमनियमों के पालन पर आवश्यक जोर देने को कहा करते थे। यथार्थतः 'हठयोग' का अधिकारी पूर्ण वैराग्यवान्, शीलवान्, मोक्ष–जिज्ञासु ही हुआ करते हैं। इसके साथ ही शारीरिक दृष्टिकोण से व्याधि रहित तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन भी अत्यन्त आवश्यक है।

**हठयोग:** – 'हठयोग' के लिए साधक का असाधारण अधिकारी होना आवश्यक है। इसीलिए नाथ–योग के अन्तर्गत महायोगियों ने मानव के श्वास क्रिया में से अन्तर्निहित एक निगूढ़ आध्यात्मिक रहस्य का आविष्कार किया है। प्रत्येक श्वास परित्याग के समय जीवात्मा 'ह' या 'अहम्' शब्द के साथ बाहर आकर विश्व–प्राण या परमात्मा से मिल जाता है फिर श्वास ग्रहण के समय 'स' शब्द के साथ विश्वप्राण या परमात्मा जीवदेह के अन्दर प्रवेश करता है। यह जीवन लीला ही प्रतिक्षण ईश में विलीन होने की एक अद्‌भुत प्रक्रिया है। इसीपर चित्त को एकाग्र करने से साधक के अन्दर स्वयं ही अलौकिक शक्ति का जागरण हो उठता है। इस मन्त्र का जप स्वभावतः ही दिन–रात चलता रहता है। साधक को मात्र अपने मन को इस सहज स्वाभाविक जप की ओर दत्त चित्त करना पड़ता है। इस जप से योगी शीघ्र ही मोक्ष रूपी समाधी को प्राप्त होता है। महायोगी ने कहा है कि–

**हकारेण वहिर्यात, स–कारेण विशेत्पुनः।**
**हंस–हंसेत्यमुं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा।।**
**षटशतानि दिवारात्रो, सहास्त्राण्येक विंशतिः।**
**एतत्सख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा।।**
**अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायनी।**
**तस्याः स्मरण मात्रेण, सर्व पापैः प्रमुच्येत।।**

संक्षेप में इस महामन्त्र के जप से साधारण साधक भी पाप से मुक्त होकर असामान्य अधिकारी बन जाता है और तभी 'हठयोग' की प्रक्रिया साधक के लिए सफलीभूत हुआ करती है।

हठयोग की साधना में अनेक प्रकार के आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, वेध एवं क्रिया योग का अनुशीलन करना पड़ता है। शरीर शोधन के लिए षट्कर्म का विधान है–

**धौतिवस्तिस्तथानेति– स्त्राटकं नौलिकन्तथा।**
**कपाल भातिश्चैतानि, षटकर्माणि प्रचक्षते।।**
**षटकर्मकामिदं गोप्यं, घटशोधन कारकम्।**
**विचित्रगुण सन्धायि, पूज्यते योगिपुङ्गवैः।।**

धौती, वस्ती, नेति, त्राटक, नौलिक, कपालभाति – इन षटकर्मों की सफल साधना

से शरीर के आन्तरिक सब दोषों का शोधन हो जाता है। साधक के देह में इन क्रियाओं द्वारा अद्भुत गुण और शक्तियों का विकास होता है। हठयोग में अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत करने की अन्य साधनायें हैं जैसे–

**महामुद्रा, महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।**
**उड्डान मूलबन्धश्च बन्धो जालन्धरामिध:।।**
**करणी विपरीताख्या, वज्रोली शक्ति चालनम्।**
**इदं हीं मुद्रादशकं, जरा मरण नाशनम्।।**
**आदिनाथोयितं दिव्यम– ष्टैश्वर्य प्रदायकम्।**
**वल्लमं सर्व सिद्धानां, दुर्लमं मरुतामपि।।**

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीत करणी, वज्रोली, शक्तिचालन–इन दस प्रकार की क्रियाओं से जरा–मरण का नाश होता है। भगवान आदिनाथ ने यह महाक्रिया 'हठयोग' के अन्तरंग साधनों के रूप में स्वयं प्रकट की जो देवताओं को दुर्लभ और साधन सिद्धों को अत्यन्त प्रिय है। 'हठयोग' का व्यवहारिक अर्थ– ***हठेन बलात्कारेण, योग सिद्धि:।***

अर्थात् बलपूर्वक योग साधना में सिद्धि लाभ करना ही है। किंतु कहीं–कहीं 'ह' से सूर्य और 'ठ' से चन्द्र अर्थात् इड़ा एवं पिंगला का भी अर्थ अभिमत है। मानव मात्र की सारी क्रियायें चाहे जाग्रत अवस्था की हों या सुषुप्त अवस्था में होने वाली हों, इन क्रियाओं का सम्बन्ध हमारे शरीर में फैले हुए 71000 नाड़ी समूहों से है। अत: 'हठयोग' में इन नाड़ियों तथा नाड़ी–चक्रों को प्रभावित कर अनेकों दिव्य शक्तियों का प्राकट्य साधक अपने अन्दर किया करता है। जीवन के सामान्य क्रम में, इड़ा, पिंगला का संचालन, प्राण शक्तियों की क्रियाशीलता, नाड़ियों की सामान्य कार्य प्रणाली ये सभी बिना किसी यत्न के स्वयं ही हुआ करते हैं। इन सब बातों को जब साधक अपनी इच्छा–शक्ति एवं विवेक से संयमित करके एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, तब 'हठयोग' के अन्तर्गत विशिष्ट शक्तियों को प्रकट करने के लिए विभिन्न नियमित अभ्यास निर्धारित हैं। 'हठयोग' की साधना से व्यक्ति क्रमश: ऐसी शक्तियों के प्रति सचेष्ट हो जाता है जो कि साधारण स्थिति में उसके मन की अतल गहराई में पूर्व से ही अव्यक्त रूप में छिपी हुई थीं। महायोगी गोरक्षनाथ जी ने 'हठयोग' की प्रधानता अपने विरक्त शिष्यों के समक्ष रखकर दिखाया कि मानव मन असीम शक्तियों का समुद्र है। 'हठयोग' की साधना मानव संस्कृति को अलौकिकता प्रदान करती है। सारांश में हठयोग प्राण–शक्ति और मनोशक्ति को बलपूर्वक निम्नतम् भौतिक तल से उठाकर अलौकिक उच्चतम् स्थिति तक ले जाता है जहां प्राण एवं मन का विलय आत्म तत्व में हो जाता है। अन्ततोगत्वा सहज ही समाधि 'हठयोग' द्वारा साधक को उपलब्ध हो जाती है।

▣ ▣ ▣

# श्री गीतामृत - पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

सभी पापियों से भी बढ़कर, तुझपर यदि पापों का भार।<br>
ज्ञान–नाव के द्वारा अर्जुन! होगे तुम उन–सबके पार।। 36।।

जलती हुई आग में पड़कर, लकड़ी होती भस्म यथा।<br>
कर्म सभी हो जाते अर्जुन! ज्ञानानल में भस्म तथा।। 37।।

हे अर्जुन! है नहीं यहाँ पर, पावन कुछ भी ज्ञान–समान।<br>
स्वयं काल पाकर योगी जन, अपने ही में पाते ज्ञान।। 38।।

पुरुष संयमी श्रद्धावाले, तत्पर रहकर पाते ज्ञान।<br>
परम ज्ञान पाकर, पा लेते, शीघ्र शान्तिमय अमर स्थान।। 39।।

श्रद्धा–ज्ञान–शून्य, संदेही, पुरुष नष्ट हैं हो जाते।<br>
लोक तथा परलोक न सुख ही, संशयवाले हैं पाते।। 40।।

संशय दूर ज्ञान से करके, त्याग योग से कर्म सभी।<br>
कर्मों के बन्धन में पड़ते, ज्ञानीजन हैं नहीं कभी।। 41।।

संशय जो अज्ञान–जनित है, उसे धरो मत तुम मन में।<br>
ज्ञान–अस्त्र से काट उसे, हो खड़े युद्ध को अब रन में।। 42।।

कैलीफोर्निया में सन् 1900 में दिया गया

# स्वामी विवेकानन्द जी का भाषण

## जीवन–गठन की साधनाएँ

यदि जगत् की गति क्रम–अवनति की ओर हो, यदि उसका पूर्वावस्था की ओर पुनरावर्तन हो, तो वह हमारी पतनावस्था होती है, और यदि उसकी गति क्रम–विकास की ओर हो, तो वह हमारा उत्थान–काल होता है। अत: हमें पूर्वावस्था की ओर इस गति को नहीं जाने देना चाहिए। सर्वप्रथम तो हमारा शरीर ही हमारे अध्ययन का विषय बनना चाहिए। पर कठिनाई तो यह है कि हम पड़ोसियों को ही सीख देने में अत्यधिक व्यस्त रहा करते हैं! हमें अपने शरीर से ही प्रारम्भ करना चाहिए। फुफ्फुस, यकृत आदि की गति क्रम–अवनति की ओर है– ये स्वत: विकासोन्मुख नहीं हैं; इन्हें ज्ञान के क्षेत्र में ले आओ, इन पर नियन्त्रण रखो, ताकि इनका परिचालन तुम्हारी इच्छानुसार हो सके। एक समय था, जब हमारा यकृत पर नियन्त्रण था; हम अपना सारा चर्म उसी प्रकार हिला सकते थे, जैसे एक गाय। मैंने अनेक व्यक्तियों को कठोर अभ्यास द्वारा इस नियन्त्रण को पुन: प्राप्त करते देखा है। एक बार छाप लगी कि मिटती नहीं। अज्ञान के अन्धकार में छिपी हुई उपरोक्त प्रकार की क्रियाओं को ज्ञान के प्रकाश में ले आओ। यही हमारी साधना का पहला अंग है, और हमारे सामाजिक कल्याण के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है। दूसरी ओर, केवल चैतन्य का ही सर्वदा अध्ययन करते रहने की आवश्यकता नहीं।

इसके बाद साधना का दूसरा अंग, जिसकी हमारे तथाकथित सामाजिक जीवन में उतनी आवश्यकता नहीं— और जो हमें मुक्ति की ओर ले जाता है। इसका प्रत्यक्ष कार्य है आत्मा को मुक्त कर देना, अन्धकार में प्रकाश लाना, मलीनता को हटाना तथा साधक को इस योग्य बना देना कि वह अन्धकार को चीरता हुआ आगे बढ़ निकले। यह ज्ञान से परे की अवस्था — यह आत्मबोध ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। जब उस अवस्था की उपलब्धि हो जाती है, तब यही मानव देव–मानव बन जाता है, मुक्त हो जाता है। और उस मन के सम्मुख, जिसे सब विषयों से परे जाने का इस प्रकार अभ्यास हो गया, यह जगत् क्रमश: अपेन रहस्य खोलता जाता है; प्रकृति की पुस्तक के पन्ने एक–एक करके पढ़े जाते हैं, जब तक कि इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; और तब हम जन्म और मृत्यु की घाटी से उस 'एक' की ओर प्रयाण करते हैं जहाँ जन्म और मृत्यु— किसी का अस्तित्व नहीं है; तब हम सत्य को जान लेते हैं और सत्यस्वरूप बन जाते हैं।

हमें पहले जिस बात की आवश्यकता है, वह है कोलाहलहीन शान्तिमय जीवन। यदि दिन भर मुझे पेट की चिन्ता के लिए दुनिया की खाक छानना पड़े, तो इस जीवन में कोई भी

उच्चतर उपलब्धि मेरे लिए एक कठिन समस्या है। हो सकता है, मैं अगले जन्म में कुछ अधिक अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लूँ। पर यदि मैं सचमुच अपनी धुन का पक्का हूँ, तो इसी जन्म में ये ही परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जायेंगी। क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम्हें वह चीज न मिली हो जिसे तुम हृदय से चाहते थे? ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि आवश्यकता ही—वासना ही शरीर का निर्माण करती है। वह प्रकाश ही है, जिसने तुम्हारे सिर में मानो दो छेद कर दिये हैं, जिन्हें आँखें कहा जाता है। यदि प्रकाश का अस्तित्व न होता, तो तुम्हारी आँखें भी न रहतीं। वह ध्वनि ही है, जिसने कानों का निर्माण किया है। तुम्हारी इन्द्रियों की सृष्टि के पहले से ही ये इन्द्रियगम्य वस्तुएँ विद्यमान हैं। कतिपय सहस्त्र वर्षों में, या सम्भव है इससे कुछ पहले ही, हममें शायद ऐसी इन्द्रियों की भी सृष्टि हो जाय, जिससे हम विद्युत्–प्रवाह और प्रकृति में होने वाली अन्य घटनाओं को भी देख सकें। शान्तिमय मन में कोई वासना नहीं रहती। जब तक इच्छाओं की पूर्ति के लिए बाहर कोई सामग्री न हो, इच्छा की उत्पत्ति नहीं होती। बाहर की वह सामग्री शरीर में मानो एक छिद्र कर मन में प्रवेश करने का प्रयत्न करती है। अतः, यदि एक शान्तिमय, कोलाहलहीन जीवन के लिए इच्छा उठे, जहाँ सभी कुछ मन के विकास के लिए अनुकूल होगा तो यह निश्चय जानो कि वह अवश्य पूर्ण होगी– यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। भले ही ऐसे जीवन की प्राप्ति सहस्त्रों जन्म के बाद हो, पर उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होगी। उस इच्छा को बनाये रखो– मिटने न दो– उसकी पूर्ति के लिए प्राणपण से चेष्टा करते रहो। यदि तुम्हारे लिए कोई वस्तु बाहर न रहे, तो तुममें उसके लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न हो ही नहीं सकती। पर हाँ, तुमको यह जान लेना चाहिए कि इच्छा–इच्छा में भी भेद होता है। गुरु ने कहा, 'मेरे बच्चे, यदि तुम भगवत्प्राप्ति की इच्छा रखते हो, तो अवश्य ही तुम्हें भगवान का लाभ होगा।'' शिष्य ने गुरु का मन्तव्य पूर्णतया नहीं समझा। एक दिन दोनों नहाने के लिए एक नदी में गये। गुरु ने शिष्य से कहा, 'डुबकी लगाओ' और शिष्य ने डुबकी लगायी। एकदम गुरु ने शिष्य के सिर को पकड़ लिया और उसे पानी में डुबाये रखा। उन्होंने शिष्य को ऊपर नहीं आने दिया। जब वह लड़का ऊपर आने की कोशिश करते–करते थक गया, तब गुरु ने उसे छोड़ दिया और पूछा, 'अच्छा, मेरे बच्चे, बताओ तो सही, तुम्हें पानी के अन्दर कैसा लग रहा था?' 'ओफ! एक साँस लेने के लिए मेरा जी निकल रहा था।' –क्या ईश्वर के लिए भी तुम्हारी इच्छा उतनी ही प्रबल है?' 'नहीं, गुरुजी।' 'तब ईश्वर–प्राप्ति के लिए वैसी ही उत्कृष्ट इच्छा रखो, तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।'

(शेष अगले अंक में)

# योग में गायत्री मन्त्र का स्वरूप

डा. जे.पी. शर्मा, पाँटा साहिब जि. सिरमौर (हि. प्र.)

(गतांक से आगे)

गायत्री के अनेकों रूप हैं परंतु उनके मुख्य ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है-

**युक्ताविदुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखरवैस्त्रीक्षणे ,**
**र्यक्तमिदुनिबद्धरत्न मुकुटां तत्वात्मवर्णात्मिकाम्।**
**सावित्री वरदाभयाङ्कु शब्दशाः शुभ्रं कपालं गुणं,**
**शंख चक्रमथार विन्दयुगलं हस्तैर्वहन्ती भजे।।**

गायत्री देवी के पाँच प्राण हैं– प्राण, अपान, उदान, समान तथा व्यान। इनके पाँच मुख हैं। पृथ्वी, जल, वायु, गगन तथा अग्नि के धारण करने वाले हैं। माता पुष्प कमल पर बैठती है। इनके दस हाथ हैं। इनके दसों हाथों में दस विभिन्न प्रकार के हथियार -- शंख, चक्र, कमलयुग्न, वरद, अभय, कशा, अंकुश, उज्जवल पात्र तथा रूद्राक्ष की माला से सुशोभित हैं।

संसार का हर जीवधारी स्वभाव से ही अजपा, जप रहा है जिसका उसे ज्ञान नहीं है। हर श्वास–प्रश्वास में अजपा गायत्री जपी जा रही है। यह जपना उसकी बाध्यता है। वह नहीं चाहे तब भी उसे जपनी ही पड़ेगी। जब तक जीवन है अविरल अजपा जप चलता ही रहेगा। इसे हंस गायत्री के नाम से भी जाना जाता है। हंस गायत्री साधना से अविवेक, अन्धकार, दुःख आदि दूर हो जाते हैं। योगियों का मूल मंत्र अजपा गायत्री ही माना गया है। जब योग साधक अपनी प्रत्येक श्वास, प्रश्वास पर ध्यान देता है तब अजपा, हृदय के अन्धकार को साफ करने लगती है। हँस जैसा विवेक जागने लगता है। हँस– नीर और क्षीर का ध्यान रखता है। आवश्यकता मात्र अपने श्वास–प्रश्वास पर ध्यान रखने की है। गंगा स्नान से शरीर शुद्ध होता है तथा गंगा मृतक को तारती है। उसी तरह गायत्री मंत्र आत्मा को तारता है। आत्मा को हँस बना देती है। हँस एक पक्षी होता है जो सर्वत्र नहीं पाया जाता है क्योंकि हँस का भोजन मोती है। मोती हर जगह नहीं मिलते। कहते हैं मानसरोवर तलाई में हँस मिलते हैं। हँस का गुण है कि दूध को पी जाता है परंतु पानी को छोड़ देता है। शरीरस्थ आत्मा भी हँस कही गयी है। जिस प्रकार हँस पक्षी का भोजन सुच्चे मोती और शुद्ध दूध है उसी प्रकार आत्मा का भोजन प्राण है। प्राण जो वायु रूप में श्वास के द्वारा मुँह के अन्दर ले जाते हैं। जैसे पैट्रोल के बिना इंजन बन्द हो जाता है ठीक वैसे ही प्राण वायु के बिना आत्मा शरीर त्याग देती है तथा

नया शरीर धारण करती है। आत्मा अजर, अमर अविनाशी है जो किसी भी प्रकार से नष्ट नही होती है। योग में आत्मा का ही महत्व होता है। प्राणों के रुप में आत्मा 'हँस' का ही सेवन करती है। 'हँस' रूपी प्राण बार–बार शरीर के अन्दर जा रहे हैं और बार–बार बाहर आ रहे हैं। जब तक हँस अन्दर–बाहर होता रहेगा, शरीर गतिशील बना रहेगा तथा आत्मा अपना कार्य शरीर के अन्दर करती रहेगी तथा संचित संस्कारों का भुगतान कराती रहेगी, परंतु हँस रूपी प्राणों के रुकने पर शरीर छोड़कर पक्षी की तरह बाहर निकल कर उड़ जायेगी। शरीर की इसी अवस्था को मृत्यु कहा जाता है।

गायत्री की दीक्षा किसी सुयोग्य गुरु से ही लेनी श्रेयस्कर होती है। हम सभी गुरु भाई धन्य हैं जिन्हें सद्गुरु रुप में पूर्ण ब्रह्म योगेश्वर मिले जिनसे हमारी दीक्षा पूर्ण हुई है। सद्गुरु के चरणों में कोटि–कोटि नमन!

''ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः''

■■■

# गुरुदेव! ऐसा वर दो

जगदीश राए बंसल 'अधम'

*ऐसा वर दे दो गुरु जी मेरा बेड़ा पार हो।*
*जय कारा लगाऊ आपका घर–घर मंगला चार हो।।*
*होगा जब उद्धार मेरा, उस दिन का इन्तजार है*
*झण्डा ऊंचा जग में तेरा, मेरा भी सिद्ध काज है*
*बरसाने जैसी होली होगी, सिद्धेश्वर की जय कार हो। ऐसा .....*
*कोई तुझको सर्व समर्थ्य, कोई योगी राज कहता है*
*मैं तो बस इतना ही बोलूं, पिता पुत्र का नाता है*
*मुझको अपना शरणा दे दो, जहाँ प्रभु रामलाल हो। ऐसा.....*
*अज्ञानता है मुझमें ऐसे, आसमां में बादल जैसे*
*दया की दृष्टी कर दो ऐसे, नरसी भक्त पर की थी जैसे*
*रामरति ज्यों शक्ती दे दो, जय जय जय गुरु देवा हो। ऐसा.....*
*आपके घर अन्धकार नही, कोटि सूर्य उजाला है*
*बाल न बांका हो सके, जिसका तू रखवाला है*
*आ जाए लहर शिवा में, सर्व समर्थ्य महान हो। ऐसा.....*
*बादल गरजे बिजली चमके, अजब रूप निराला है*
*कहीं पर्वत कहीं रेत के टीले, कहीं सागर गहरा है*
*कहीं फलों से बाग लदे, कहीं सिद्ध गुफा बनाए हो। ऐसा .....*
*आप नही सुनोगे दाता, किस को अर्ज सुनाऊंगा*
*अगर कभी रूठ गए तो, चरण पकड़ मनाऊंगा*
*पानी पतला कौआ काला, अधम शरण स्वीकार करो। ऐसा .....*

■■■

# याद रखो

यहाँ के धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार, यश-कीर्ति आदि का कोई महत्व नहीं है। ये तो प्रारब्धवश राक्षसों तथा चोर-डाकुओं के पास भी हो सकते हैं। महत्व तो है दैवी सम्पदा के गुणों का। जीवन में उन्हीं का उपार्जन, सेवन तथा संवर्धन करते रहना चाहिए। धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार और यश-कीर्ति प्रचुर मात्रा में प्राप्त भी हो गये और जीवन आसुरी सम्पदा से भरा रहा। पापकर्म होते रहे तो इन सब पदार्थों के होने पर भी न यहाँ शान्ति-सुख मिलेगा और न परलोक में ही। वरं जिन आसुरी स्वभाव वाले मानवों को ये सब प्राप्त हैं, वे जिस घोर अशान्ति, दिन-रात के अन्तर्दाह, अत्यन्त चिन्ता का भोग करते हैं और आठों पहर काम, क्रोध, लोभ, अभिमान के वश होकर द्रोह, दम्भ, द्वेष, चोरी, ठगी, छिपी या खुली डकैती, पर-निन्दा, पर-अनिष्टसाधन, वैर, हिंसा, ध्वंस आदि मानस तथा शारीरिक पापों में लगे रहते हैं, उस पर विचार करने पर तो इस स्थिति से बुद्धिमान् पुरुष को बड़ा भय लगता है। पर नरक के कीट की भाँति दिन-रात ऐसे ही पतित जीवन के प्रवाह में पड़े हुए वे लोग इस पाप-जीवन में गौरव का अनुभव करने लगते हैं और इसको कर्तव्य मान लेते हैं। यह भविष्य को, सर्वथा दुःख संतापमय बनाने वाली बड़ी बुरी स्थिति है। आसुरी भोग-जगत् में प्रायः यही स्थिति है।

# मीडिया पोस्ट

## हृदय स्पर्शी सेवा

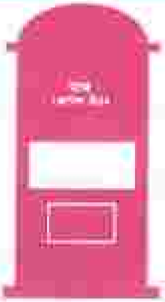

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आरक्षण (स्थान आरक्षण) का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पोस्ट कार्डों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के फर्श पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

JANUARY 2011

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धस्रोत

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा